इन पत्रों के सम्बन्ध में–

हमने क्यो लिखे ये पत्र ? हमने क्यो उस जीवन को, जिसके आगे संसार का हर एक स्त्री-पुरुष 'सौभाग्य' का कोई न कोई पर्यायवाची शब्द विशेषण के रूप में लगा हुआ देखना चाहता है, 'अभागे' के साथ संयुक्त किया ? ससार के स्त्री-पुरुषो की भाँति हम भी चाहते हैं कि हमारे दाम्पत्य-जीवन के आगे सदा 'सुन्दर और सौभाग्य' का कोई न कोई पर्यायवाची शब्द लगा रहे, पर उसके साथ ही हम यह चाहते हैं कि हमे अपने दाम्पत्य-जीवन को 'सुन्दर' और 'सौभाग्यशाली' बनाने के लिये प्रयत्न के मार्ग पर चलना चाहिये। हम जब प्रयत्न के अपने इस मार्ग पर चले तो स्त्री वास्तविक स्त्री हो और पुरुष वास्तविक पुरुष। प्रकृति वैवाहिक जीवन के रूप में हमें जिस महान् उत्तरदायित्व के क्षेत्र में उतार देती है, हम उसे समझे और उसीके अनुरूप अपने-अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न भी करे। हमारा सारा निर्माण प्रेम, विश्वास, सहयोग और सहानुभूति के आधार पर होना चाहिये। हमारी एक-एक गति में प्रेम की शक्ति होनी चाहिये, विश्वास का साहस होना चाहिये। हम जो कुछ भी करे सहानुभूति के साथ करे, सहयोग के साथ करे। हम प्रत्येक स्त्री-पुरुष से उनके प्रयत्न के रूप में चाहते हैं उनका पारस्परिक सहयोग और उनकी पारस्परिक सहानुभूति। हम चाहते हैं वे सदा प्रेम और विश्वास के तारो मे बँधे रहे। यदि कभी कही से इन तारो मे किसी प्रकार की कमजोरी दिखाई पड़े तो उसे जोड़ने के लिये, उसे दृढ बनाने के लिए उनके हाथ उठे, एक ही साथ उठे।

पर आज कहाँ चल रहे हैं लोग प्रयत्न के मार्ग पर ! प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने हृदय मे 'सुन्दर' और 'सौभाग्यशाली' दाम्पत्य-जीवन की कामना अवश्य करता है, पर स्त्री न वास्तविक स्त्री बनने का प्रयत्न करती है और न प्रयत्न करता है पुरुष वास्तविक पुरुष बनने का। दोनो निजी सुखो की इच्छाओ और स्वार्थों को लेकर वैवाहिक जीवन मे प्रवेश तो करते हैं, पर इच्छाओ की संपूर्ति और सुखो की प्राप्ति के लिये वैवाहिक जीवन को सुन्दर साँचे मे ढालने का प्रयत्न नही करते। आज इस प्रयत्न के अभाव में ही तो हमारा दाम्पत्य-जीवन अधिक विषाक्त हो उठा है। स्त्री-पुरुष दोनो ही उससे दुखी हैं, दोनो ही के हृदय मे उससे असन्तोष है। स्त्री की धारणा है, पुरुष भूला हुआ है, और पुरुष सोचता है, स्त्री भटकी हुई है। इसीलिये दोनो एक दूसरे के सम्मुख आरोप-प्रतिरोप भी उपस्थित करते हैं। यह पुस्तक आज के उन्हीं स्त्री-पुरुषों के आरोपो-प्रतिरोपो का एक चित्र है। दोनो ने अपने-अपने दृष्टिकोण से एक दूसरे को देखा है। काश, दोनो एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझ लेते और वास्तविक पति-पत्नी के रूप मे अपने मार्ग पर आ जाते। इन पत्रो की पंक्तियो मे यही तो आशा छिपी है और यही छिपी है अभिलाषा। यदि दोनो भूले हुए बटोही इन पत्रो को पढ़कर अपनी भ्रामक प्रगति को कुछ रोक सकते...... ।

श्रमिक निवास, कटरा
प्रयाग
११—८—४१

विनीत
व्यथितहृदय

उन्हीं के चरणों पर—

जो आज दाम्पत्य जीवन की पीड़ा से
अधिक पीडित है, सहानुभूति के
ऑसू के रूप मे ये पत्र उन्ही
के चरणों पर

—व्यथितहृदय

भेंट

* श्रीः *

अभागे दम्पति
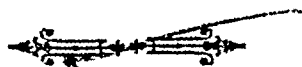
काश, मैं कुमारी होती

बनारस

२-४-४१

प्रिय सरला

हम और तुम एक ही डाल पर बैठने वाली दो चिड़ियाँ थीं। साथ साथ खेलती थीं, साथ साथ डोलती थीं, और साथ ही साथ बोलने के लिये अपने अपने चंचु भी खोलती थीं। वह उड़ना, वह फुदकना, और वह गाना! कितने सुख के वैभवो से लदी हुई थी वह डाल! आज जब मै अपनी उस डाल का स्मरण करती हूँ, तब हृदय के एक एक कोने मे दुख का बवण्डर सा पैदा हो जाता है और साथ ही मै यह भी सोच उठती हूँ, कि दाम्पत्यजीवन की जंजीरो को तोड़कर यहाँ से उड़ जाऊँ और फिर उसी डाल पर बैठ कर तुम्हारे साथ चहकूँ, फुदकूँ और आनन्द के राग गाऊँ!

तुम यह न सोचो सरला, कि मै शैशव के सुखो के लिये पीछे की ओर लौटना चाहती हूँ, वास्तव में बात तो यह है, कि मै जीवन के क्षेत्र

में आगे बढ़ी ही नहीं ! मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो जहाँ मै थी, वहाँ से बहुत पीछे ढकेल दी गई हूँ। ढकेल दी गई हूँ ऐसे लोक मे, जहाँ अन्धकार ही अन्धकार है, दुःख ही दुःख है ! फिर मेरे हृदय मे क्यो न पीछे की ओर लौटने की अभिलाषाएं पैदा हों सरला ? मै क्यो न यह सोचूँ कि काश, मैं फिर उसी डाल पर बैठकर तुम्हारे साथ आनन्द के गीत गा सकती ? मै ही नहीं, मेरी ही भाँति आज अनेक बहने भी इसी की कल्पना करती होगी। मैं तो प्रत्यक्षत: अपने हृदय मे उनकी कल्पना का अनुभव कर रही हूँ और सुन रही हूँ उनके अन्तरतम की झन-झनाहट को ! सब की सब यही तो चाहती हैं कि काश, मै फिर पीछे लौट सकती, और लौट कर ऐसे स्थान में जा सकती जहाँ दुख न होता, वेदना न होती और न होता अन्धकार !!

तुम पूछ सकती हो सरला, कि आखिर दाम्पत्य जीवन के मार्ग पर चलने वाली ये नारियाँ पीछे लौटनेके लिये इतनी आतुर क्यो हैं ? विवाह ने जब उन्हें पूर्ण बना दिया, तब वे फिर क्यो अपूर्ण होना चाहती हैं ? सुन लो सरला, हृदय के कानो को खोल कर सुन लो !! वे नारियाँ भी संसार के मनुष्यो की भाँति एक जीवित प्राणी हैं, उनकी भी रगों मे रक्त और मस्तिष्क मे चेतना है। मै मानती हूँ कि समाज ने उनके शरीर मे अपने कानून की जोके लगा कर उन्हें मृतप्राय बना डाला है, किन्तु समाज उनसे अपनी इच्छाओ की पूर्त्ति तो कराता ही है ! फिर वे दुख को दुख और सुख को सुख समझ लें तो आश्चर्य क्या ? एक जीवित प्राणी यदि इतना भी न समझ सके तो उसके जीवित जीवन का महत्त्व ही क्या ? शरीर मे जब तक रक्त का बूँद अवशेष रहेगा, दंश मारने पर

उसमें पीड़ा उत्पन्न ही होगी। आज मै भी तो रक्त के उसी बूँद के प्रभाव से अपनी पीड़ा का अनुभव कर रही हूँ, और देख रही हूँ अपने अन्तरतम में उठती हुई असन्तोष की चिनगारियाँ!

हॉ सरला, वे सचमुच असन्तोष की चिनगारियॉ हैं! वे उठ रही हैं, और उडने के लिये आतुर हो रही हैं। एक एक कणी उड़ कर दाम्पत्य जीवन के उस जीर्ण छप्पर पर जम कर बैठ जाना चाहती है, जिसके नीचे बैठ कर मै मनुष्य रूप में पशुओं की भॉति ऑसू बहा रही हूॅ। पशुओं की भॉंति क्यो ? पशु तो हुंकार कर सकता है और कर सकता है चीत्कार। पर मेरा तो उस छप्पर के नीचे बोलना और चीत्कार करना भी अपराध है, भयानक अपराध। शत शत बिच्छू एक ही साथ शरीर में डंक मारते हों, पर मैं उस छप्पर के नीचे मुॅह नहीं खोल सकती, घूॅघट नहीं उठा सकती। और ? और जबान से उफ़ तक नहीं कर सकती। फिर उस छप्पर को जलाने के लिये क्यो न मेरे हृदय मे चिनगारियाँ उठें सरला ? मैं क्यो न यह सोचूॅ कि उसे शीघ्र से शीघ्र जला कर यहाँ से उड़ जाऊँ, और उड़ जाऊॅ ऐसे स्थान में, जहॉ समाज के कानून की जोकें शरीर के रक्त को न चुस सकें, चूस कर अपने को न मोटी बना सके!

सचमुच समाज के कानून मेरे लिये खून चूसने वाली जोकों ही के सदृश हैं सरला! इन्हीं जोको के रक्त चूसने ही के कारण तो मेरे नारी—जीवन का विकास सिसकियॉ भर कर ऑसू बहा रहा है। संसार मे जब हर एक पदार्थ का प्रकृत धर्म है विकास की ओर अग्रसर होना, तब मैंने ही ऐसा कौन सा अपराध किया है, जो उस प्रकृत धर्म से वंचित होऊँ! क्या सृष्टि के उस विकासवाद के इतिहास में

मेरा नाम नहीं? यदि नहीं तो मै कहूँगी सरला, कि वह गलत है। नारी जब अपूर्ण संसार को पूर्ण बनाती है, तब आश्चर्य है कि वह विकास से वंचित रहे! किन्तु क्या कभी तुमने यह सोचा है सरला, कि सृष्टि को कानूनो के चक्र से चलाने वाले लोग हैं कौन? वही पुरुष, जो बड़े यत्न से दाम्पत्य-जीवन का छप्पर बना कर तैयार करते हैं, और अपनी अभिलाषाओ और उमंगो की संपूर्ति के लिये मिट्टी की पुत्तलिका सरीखी नारी को उसके एक कोने मे लाकर बिठा देते हैं। नारी उसमें घुट-घुट कर प्राण देती है, और वे कहते हैं, नारी का इस प्रकार घुट घुट कर प्राण देना कर्तव्य है, धर्म है! सृष्टि के विकासवाद के इतिहास मे जहाँ उन्होने संसार के अन्यान्य जीवो के जीवन-विकास की उचित समीक्षा की है, वहाँ उन्होने नारी के जीवन-विकास का चित्रण किया है इन शब्दो में-'नारी का धर्म है पुरुष की सेवा मे घुट घुट कर प्राण देना!'

यही है हमारा वह दाम्पत्य-जीवन सरला, जिसके लिये नारी की जगत में सृष्टि होती है। मै अपने इस जीवन के केन्द्र पर स्थित रह कर दिन रात अपने चारो ओर प्रकाश की किरणे बिखेरती हूँ। घर का प्रत्येक प्राणी मुझसे चाहता है उत्सर्ग, त्याग और बलिदान। मै सब के लिये, सब की प्रसन्नता के लिये, सचमुच अपना बलिदान करती हूँ। अपनी अभिलाषाओ को उनकी उमंगो की शूली पर चढ़ा देती हूँ। दीपक की तरह दिन रात जलती हूँ, घुट-घुट कर प्राण देती हूँ, किन्तु मुझे मिलता है क्या सरला?—प्रकृति का दिया हुआ प्रकाश और वायु भी तो नही! फिर मै इस दाम्पत्य-जीवन को लेकर करूँ क्या? अच्छा है, शीघ्र से शीघ्र उसका छप्पर जल कर खाक हो जाय। लोग कह सकते हैं कि मेरी ऑखो

में युरोपीय सभ्यता का उन्माद है। किन्तु यदि भारतीय संस्कृति का यही तात्पर्य है कि नारी दाम्पत्य-जीवन के वृक्ष की छाया के नीचे बैठ कर घुट घुट कर प्राण दे तो मैं कहूँगी कि सचमुच मेरी आँखो में युरोपीय सभ्यता का उन्माद है। मैं तो भारत की एक एक नारी को, जो मिट्टी की पुत्तलिका सरीखी कोने में बैठी हुई अपने भाग्य पर आँसू बहा रही है, जीवन के मार्ग पर स्वतंत्र रूप से चलती हुई देखना चाहती हूँ—उसी तरह देखना चाहती हूँ, जिस तरह आज युरोप, अमेरिका और जर्मनी इत्यादि देशो की स्त्रियाँ अपने अपने पथ पर चल रही हैं। आखिर ये भी तो स्त्रियाँ हैं, उनका भी तो समाज है, और उनका भी है दाम्पत्य-जीवन! वे अपने समाज और अपने दाम्पत्य-जीवन की ओर से कितनी स्वतंत्र हैं, कितनी स्वाधीन हैं! उन्होने सचमुच पाया है अपना दाम्पत्य-जीवन। वे दाम्पत्य-जीवन में बँध करके भी दासता के बंधन में नहीं बँधतीं। भारतीय दाम्पत्य-जीवन की तरह उनका दाम्पत्य-जीवन उनसे यह नही कहता कि तुम दीपक की भाँति जलो, अपना बलिदान दो, और पुरुष की इच्छाओ की शूली पर चढ़ा दो अपने सम्पूर्ण जीवन को। उनके दाम्पत्य-जीवन में उनका हृदय अपना हृदय होता है, उनका प्राण अपना प्राण होता है। विवाह की जंजीर मे बँधने के पश्चात् भी वे अपने हृदय और अपने प्राण को उसमें बँधने नही देतीं! जब तक पुरुष सहृदय सहयोगी की भाँति उनके साथ चलता है, वे दाम्पत्य-जीवन के मार्ग पर आगे बढ़ती जाती हैं। अन्यथा विवाह की जंजीर को तोड़ कर अपने को बन्धन से मुक्त कर लेती हैं! समाज की ओर से उन पर कोई कठोर बन्धन नहीं, प्रतिबन्ध नहीं! बन्धन और

प्रतिबन्ध की तो उनके समाज मे कल्पना तक नहीं की जाती ! उनका समाज अधिक उदार है, अधिक सहृदय है । वह नारी का पुरुष से भी अधिक सम्मान करता है, और देता है उसे अधिकसे अधिक मानवी अधिकार । इसीलिये वह आज के संसार मे अधिक आदर्श-नीय भी तो समझा जाता है ।

किन्तु हमारा समाज कितना अधिक कठोर है, कितना अधिक संकीर्ण है सरला ! उसकी संकीर्णता और कठोरता की एकएक कहानी हृदय को कँपा देती है, अन्तर के कोने-कोने में बवण्डर उत्पन्न कर देती है। नारी जब बालिका के रूप में जन्म ग्रहण करती है, तभी से वह अपनी कठोरता के कोड़े उसकी पीठ पर लगाना आरंभ कर देता है । वह कोड़े मार-मार कर नारी को आगे बढ़ाता है, और उसे दाम्पत्य-जीवन की ओर अग्रसित करता है । समाज के कोड़ो के भय से सिकुड़ी हुई नारी! दया की मूर्ति की भाँति वह बेचारी दाम्पत्य-जीवन की भट्टी मे कूद पड़ती है। वहाँ उसके पास अपना कुछ भी नही होता । यहाँ तक कि हृदय और प्राण भी । समाज उसका उससे सब कुछ छीन लेता है। वह एक निर्जीव पुतली की भाँति दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करती है । समाज कोड़े मार मार कर उसे प्रेम करना सिखाता है । वह समाज की आँखो से देखती है, और उसीके हृदय से प्रेम भी करती है। समाज और समाज के नामधारी पुरुष चाहे उस पर जितना अत्याचार करे, अपनी अमानु-षिकता के चाहे जितने कोड़े लगाये, पर वह उफ तक नहीं करती ! वह निरीह और मूक की भाँति सब कुछ सहन करती है। समाज अपने बन्धनो में उसे इस तरह जकड़े हुए है, कि वह रंच मात्र भी हिलडुल नहीं सकती।

यहाँ तक कि अपनी भूख-प्यास को भी प्रकट नहीं कर सकती ! पुरुष के हाथ मे बिका हुआ उसका वह जीवन ! कितना दयनीय है, कितना करुणा पूर्ण है ! यदि नारी अपने इस दयनीय जीवन का अन्त करने के लिये कमर कस ले तो आश्चर्य की बात क्या ? आज मेरे हृदय में जो तूफान उठ रहा है सरला, वह समाज के इसी अत्याचार का प्रतिफल है। आखिर कहॉ तक बिताऊँ दयनीय जीवन, और कहॉ तक झेलूं आपदाएं ! समाज ने अत्याचारो के दंश मार मार कर यह सोचने के लिये विवश कर दिया है सरला कि काश, मै कुमारी होती !

तुम्हें आश्चर्य होता होगा सरला, पर सचमुच मै आज यह सोच रही हूँ बहन, कि यदि मै कुमारी होती ! मै जानती हूँ कि समाज मेरे उस जीवन को अपने कुत्सित भावनाओ के बाण से जर्जर बना देता, पर उस समय मै स्वाधीन होती। मेरा हृदय अपना हृदय होता, मेरा प्राण अपना प्राण होता ! पति के रूप में आज जो पुरुष-शक्ति मेरे जीवन के साथ खेल कर रही है, मै उस समय उससे मुक्त होती । मै मानती हूँ कि उस जीवन मे मुझे परिश्रम करने पड़ते, जीवन-निर्वाह के लिये अवलम्ब ढूँढ़ने पड़ते, किन्तु पीठ पर स्वेच्छाचारिता का कोडा तो न बरसता । प्रकाश में रहती, वायु मे टहलती, और पुरुषो ही की भॉति अपने जीवन के आवश्यक काम करती। आखिर युरोप और अमेरिका की अनेक स्त्रियॉ भी तो इसी प्रकार का अपना जीवन बिता रही हैं । कदाचित् उन बहनों ने दाम्पत्य-जीवन के पीड़क परिणाम पर पहुॅचने के पश्चात् ही विवाह न करने का दृढ़ निश्चय किया है । जब वे अपने जीवन-मार्ग पर सुख-शान्ति के साथ चली जा रही हैं, तब मुझे ही क्यो कठिनाइयों का

सामना उठाना पड़ता ? सुख-शान्ति न भी होती, तो आज की तरह घुट-घुट कर मरना तो न होता ! हृदय और प्राणो के रहते हुए निर्जीवों की भाँति संकेतो पर नाचना तो न होता । उस समय जो कुछ भी होता, आज से अच्छा होता और होता नारी-जीवन के लिये अधिक कल्याणजनक !!

तुम्हारी सखी

मोहिनी

विवाह के जुये में हारी हुई

बनारस

४—४—४१

प्रिय बहन सरला !

तुम मेरी सखी हो, और सखी भी ऐसी, जो अन्तर में प्रवेश करके रहती हो। तुम मेरे हृदय के कोने-कोने को जानती हो सरला ! तुमने विवाह के पूर्व के मेरे हृदय-प्रदेश को देखा था। उसमें कितनी उमंगे थीं, कितनी अभिलाषाये थीं, और कितनी थीं आकाक्षाये ! मै जब एकान्त में होती, तब उन्हीं के सुनहले जाल बुनती और उन्हीं के सहारे एक भव्य गढ़ी बनाकर उसमें रहने का संकल्प करती। सोचती, विवाह होगा और मिलेगा एक जीवनसाथी। मै उसकी जीवन-रानी हूँगी और वह होगा मेरे जीवन का राजा। दोनो साथ साथ जीवन के मार्ग पर चलेगे। आपस में न भेद होगा, और न अन्तर, किन्तु अब ऐसा ज्ञात होता है सरला, कि वह सब स्वप्न था, मृग मरीचिका थी। विवाह के पूर्व नारी चाहे जितनी स्वर्ण अभिलाषाओ के जाल क्यो न बुने, पर हमारे समाज में दाम्पत्य-जीवन के आँगन में उसे कुछ नहीं मिलता। न प्रेम, न शान्ति, न सुख और न अधिकार। मैं यह नहीं कहती कि संसार के सभी देशो का दाम्पत्य-जीवन नारी के लिये ऐसा ही अंधकारमय है। हो सकता है कुछ देशो में स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् उच्चतर जीवन व्यतीत कर रही हों, पर हमारे समाज में तो इसका पूर्णत:

अभाव है सरला ! मै तो दाम्पत्य-जीवन के ऑगन में डोलती हुई स्त्रियो पर जब दृष्टि डालती हूॅ, तब वे सबकी सब रिक्त और कॅगालिनी दिखाई पड़ती हैं। उनमे से बहुतों की कंगालीपन का चित्र तो इतना भयानक और इतना करुणाजनक होता है, कि उसके स्मरणमात्र से रोगटे खड़े हो जाते हैं। उन्हीं स्त्रियो को देख कर तो मैने तुम्हे लिखा था कि काश, मै कुमारी होती !

मेरे ही जीवन का चित्र क्या कुछ कम भयानक है सरला ? तुम जानती हो, मनुष्य को विवाह की क्यो आवश्यकता होती है ? कदाचित् जीवन के सुख, शान्ति और विकास के लिये। विवाह के सूत्र मे बॅधनेवाले स्त्री पुरुष विवाह के ही द्वारा सुख, शान्ति और विकास की खोज करते हैं। किन्तु क्या कोई पारस्परिक प्रेम के अभाव में भी कहीं सुख, शान्ति और विकास को प्राप्त कर सकता है ? विवाह के सूत्र मे बॅधनेवाले स्त्री पुरुषो, मे जब पारस्परिक प्रेम ही न होगा तो उनके जीवन को सुख, शान्ति और विकास कहॉ से मिल सकता है ? कहॉं है हमारे जीवन मे सुख, कहॉ है हमारे जीवन में शान्ति और कहॉं हो रहा है हमारे जीवन का विकास ? मै तो देखती हूॅ कि मैं दिन रात अंधकार की ओर खिसकी जा रही हूॅ, गड्ढे की ओर झुकी जा रही हूॅ। दिन रात हृदय मे एक असन्तोष, एक हलचल ! मै रह-रह कर सोचती हूॅ, क्यो मैने इस ऑगन मे पैर रक्खा ? क्यो मैने इस जलते हुए तवे पर हाथ रक्खा ? मुझे स्वयं अपने पर तरस आता है। तरस इसलिये आता है, कि मुझे इसका पता न था, इसका बिलकुल ज्ञान न था। यदि मैं जानती, कि हमारा समाज विवाह के द्वारा स्त्रियो को वन्दिनी बनाकर पिंजडे में डाल

देता है, तो मैं कदापि इस आँगन में पैर न रखती, इस बेड़ी से अपने को न बँधाती !

आओ सरला, अब हम तुम्हें दिखायें अपने वैवाहिक जीवन का चित्र ! तुम मेरी सखी हो, अन्तःप्रदेश मे रहने वाली सहेली हो ! इसलिये मै तुम्हें बारी बारी से अपने हर एक चित्र को भली भाँति दिखा भी सकूँगी। तुम इन चित्रों को देख कर उन स्त्रियो के वैवाहिक जीवन के चित्रो का अनुभव करो, जो इस समय वैवाहिक जीवन के आँगन में बैठ कर आँसू बहा रही हैं। हाँ तो देखो सरला, तुम मेरे वैवाहिक जीवन के चित्रों को। पहले मै तुम्हे उस चित्र को दिखाऊँगी, जिससे वैवाहिक जीवन के आँगन मे चमक आती है, जिससे उसका महत्त्व बढ़ता है। उस चित्र का नाम है सरला, प्रेम। विवाह के पश्चात् हर एक स्त्री चाहती है उसका पुरुष उससे प्रेम करे। स्त्री की भाँति पुरुष भी अपनी स्त्री से प्रेम चाहता है। दोनो एक दूसरे के प्रेम के इच्छुक होते हैं, दोनो ही एक दूसरे का प्रगाढ़ विश्वास चाहते हैं। पर उन दोनों की चाह मे अन्तर होता है सरला ! स्त्री जहाँ सच्चे हृदय से पुरुष का प्रेम चाहती है, वहाँ पुरुष की चाह में अधिकार की भावना होती है। वह अपनी स्त्री को अपने हृदय का प्रेम दे या न दे, किन्तु वह चाहता है, कि स्त्री उसे सदा अपने हृदय का प्रेम-कोष लुटाती रहे। वह कहता है कि स्त्री के प्रेम पर, उसके हृदय पर, सम्पूर्ण रूप से उसका अधिकार है। वह यह नहीं जानता कि स्त्री भी मनुष्य है, उसके पास भी मानव-हृदय है, और उसके मानव हृदय में भी प्रेम की भूख और प्यास है। स्त्री के लिये यदि वह कुछ जानता है तो केवल यही कि स्त्री के मन और शरीर पर सम्पूर्ण रूप से उसका

अधिकार है। वह स्त्री के मनको चाहे जिस ताल पर नचाये, वह स्त्री के शरीर को चाहे जिस अग्निकुण्ड में झोंके, पर स्त्री उफ़ तक न करे, अपनी ज़ुबान तक न खोले। वह इसको नारी-जीवन की सर्वश्रेष्ठ मर्यादा समझता है। वह अर्द्धरात्रि मे शराब के नशे में वेश्या के घर से लौटकर जब द्वार की साँकल खटखटाये, तब स्त्री पुतली की भाँति दौड़ती हुई उसके पास जा पहुँचे और उसके पैरो से लिपट कर प्रेम भरे बचनों मे उसका स्वागत करे! यदि वह नशे में लात-घूँसो का प्रहार करे तो वह उफ़ तक न करे, ज़ुबान तक न खोले! यही है पुरुष के प्रेम की परिभाषा। आज पुरुष के इसी स्वार्थपूर्ण प्रेम ने तो मेरे अन्तर के कोने कोने में आग लगा दी है सरला! होगी कोई स्वर्ग लोक मे रहने वाली तपस्विनी, जो साधिका की भाँति अपने हृदय के टुकड़े काट-काट कर अपने ऐसे पुरुषको लुटाती रही होगी, पर मैं तो मनुष्य हूँ सरला! मनुष्य होने के कारण मै भी अपने हृदय में चाह रखती हूँ, और रखती हूँ अभिलाषा तथा उमंगे। यदि मुझसे कोई चाहता है कि मै हृदय से उसे जीवन का राजा कहूँ, तो मैं भी किसी से चाहती हूँ कि वह मुझे कहे—जीवन की रानी। यदि कोई मुझसे चाहता है मेरे हृदय का प्रेम, तो मैं भी चाहती हूँ, कि किसी के हृदय का प्रेम-कोष निरन्तर मेरे लिये खुला रहे। पुरुष की ओर से नारी के ऊपर यह कितना अत्याचार है सरला, कि नारी तो उसके प्रेम की आग में सदा अपने को मोम की भाँति गलाती रहे, और पुरुष की ओर से उसे कुछ न मिले! यदि मिले तो प्रताड़ना, पीडा, और दुःख! आज मुझे भी तो यही मिल रहा है सरला! मैं दिन रात इसी की आग में जलती हूँ और सोचती हूँ कि किस प्रकार अपने इस जीवन का सर्वान्त कर

दूँ, किस प्रकार शीघ्र से शीघ्र इस दावानल से अपने को बाहर निकाल लूँ !

वे जो मेरे जीवन के साथी हैं, यही तो मुझसे चाहते हैं कि मै दिन रात छाया की भाँति उनका अनुगमन किया करूँ, उनके संकेतो पर कठपुतली की भाँति नाचा करूँ ! वे चाहे मेरी भर्त्सना करे, और चाहें करे मेरी उपेक्षा, पर मै उन्हे प्रेम की रानी बन कर सदा अपनी मुसकुराहट का दान दिया करूँ। कितने वज्रहृदय पुरुष होते हैं सरला ! भूखी, प्यासी और पीड़ित नारी को अधिकार के कोड़े मार मार कर हँसाना इन पुरुषो ही का काम है। इन पुरुषो से कोई यह नहीं पूछता कि जब कलिका के तरु को नीर से न सींचा जायगा, तब कलिका विकसित कहाँ से होगी ? पुरुष ठीक लोभी भ्रमर की ही भाँति नारी रूपी कलिका के ऊपर मँडराते हैं और उसके सारे जीवन-सत्त्व को चुराकर भाग जाते हैं। फिर तो उसकी ओर आँख उठाकर देखते भी नहीं। वह भूखी है या प्यासी, पीड़ित है या दुखी, इसकी पुरुषो को क्या चिन्ता ? वे तो नारी को जगत का एक उपेक्षित प्राणी समझते हैं, और इसीलिये उसे और भी अपनी उपेक्षा के आघात से दलित करते हैं। तुम्हें विश्वास न हो सरला, तो एक एक घर के भीतर जाकर देख लो ! सूखी सूखी हड्डियोवाली न जाने कितनी उपेक्षित नारियाँ तुम्हे चीत्कार और हाहाकार करती हुई दिखाई देंगी। उन उपेक्षित नारियो के चीत्कार और हाहाकार से घर की दीवालें तक काँप उठी होगी, पर सभ्य और शिक्षित कहलाने वाले पुरुषो के हृदय मे रंच मात्र भी दया का स्रोत न उमड़ा। इसीलिये तो वे अब भी अपने अधिकार का कोड़ा उसकी पीठ पर सटासट लगाते जा रहे हैं, और उसे पिंजड़े में बन्दिनी बना कर रखने मे ही अपने पौरुष का महत्त्व समझ रहे हैं।

जब मै अपने और अपनी सरीखी करोड़ों नारियों के उपेक्षित जीवन पर दृष्टिपात करती हूँ, तब अनायास ही मेरे मन में यह प्रश्न उठता है सरला, कि आखिर ऐसा क्यो है ? सृष्टि के इतिहास में जब नारी 'शक्ति' और 'लक्ष्मी' के नाम से सम्बोधित की गई है, तब वह आज क्यों उपेक्षित बनकर आँसू बहा रही है ?, कहीं सृष्टिका इतिहास नारी के अधिकार के सम्बन्ध में भ्रमात्मक तो नहीं है। किन्तु नहीं सरला, सृष्टि का इतिहास जब कही से अपूर्ण और भ्रमात्मक नही, तब वह नारी के अधिकार के सम्बन्ध में भ्रमात्मक नही हो सकता। सृष्टि के इतिहास में तो स्पष्टरूप से नारी और पुरुष आमने सामने खड़े दिखाई देते हैं। समाज और राष्ट्र की रचना में भी दोनों का बराबर अधिकार उद्घोषित है। देखो न, वेदभगवान क्या कहते हैं—'जैसे समुद्र नदियो का राजा है, उसी प्रकार हे नारी, तू पति के घर में साम्राज्ञी बन कर रह। ससुर तुझे अपने घर की महारानी समझे, देवर तुझे साम्राज्ञी समझे, ननदें तेरा शासन माने और सास समझे तुझे अपने घर की महारानी।' वेदों मे है नारी के अधिकार की ऐसी महत्त्वपूर्ण व्याख्या ! फिर नारी उपेक्षित क्यो ? उसके महत्वपूर्ण जीवन पर ऐसा कठोर प्रहार क्यो ? क्या इससे यह प्रमाणित नही होता सरला, कि पुरुषो ने अपनी शक्ति के मद में नारी के जन्मसिद्ध अधिकारो पर धूलि डाल दी है, क्योंकि वेद के पश्चात् पुरुषो के बनाये हुये सभी ग्रन्थ नारी को पुरुष की दासी बताते हैं, और बताते हैं उसके संकेतों पर नाचनेवाली कठपुतली !

यह विवाह का अभिनय क्यों होता है सरला ! नारी को पुरुष की दासी बनाने के लिये ही तो ! मेरी सम्मति में तो नारी के उपेक्षित जीवन

का स्रोत यही से फूटता है। यहीं से नारी बन्दिनी होती है, और बनती है, पिंजड़े की चिड़िया। पुरुष विवाह के द्वारा नारी के मन और शरीर को खरीद लेता है। वह नारी का पालन-पोषण करता है, और उसके बदले में नारी की पीठ पर लादता है अपने अधिकार का बोझ। नारी उस बोझ को अपनी पीठ पर चुपचाप लादे हुए पुरुष के पीछे पीछे जीवन-मार्ग पर चली जाती है। वह हर एक प्रकार से असहाय होती है, निर्बल होती है, और होती है अबला। जानती हो सरला, उसे ये उपाधियाँ किसके द्वारा प्राप्त होती हैं? विवाह के। विवाह की जंजीर में बँधकर नारी जब अपना सब कुछ पुरुष को सौंप देती है, तब वह सचमुच असहाय बन जाती है और हो जाती है अबला। नारी को असहाय और अबला बनाने के लिये ही तो पुरुषों ने विवाह की सृष्टि की है। संसार के अन्यान्य देशों में तो विवाह का फन्दा नारी के गले में कुछ उदारता के साथ डाला जाता है। उन देशों में यदि नारी चाहे तो उस फन्दे को अपने गले से बाहर भी निकाल सकती है, किन्तु भारतीय समाज में विवाह का फन्दा जब नारी के गले मे पड़ा, तो वह जीवनपर्यन्त पड़ा ही रहता है। नारी उसी फन्दे में घुट घुट कर प्राण दे देती है, पर उससे बाहर नहीं निकल सकती। उसकी अवस्था उस जुवारी के सदृश होती है, जो दाँव पर अपना सब कुछ हार जाता है, और फिर विजेता के हाथों में बिककर अपना हाथ मलता है। हमारे समाज में विवाह नारी के लिये जुए के ही सदृश होता है सरला! नारी पुरुष के साथ दाँव पर अपना सब कुछ लगाकर उसमे हार जाती है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा सरला, कि विवाह में एक विशेष प्रथा के द्वारा कृत्रिम जुआ खेला भी जाता है और उसमें नारी

को हारना सिखाया जाता है । बेचारी नारी जुए में हारकर पुरुष के सामने अपना सिर झुका लेती है और फिर जीवन पर्यन्त उसी प्रकार सिर झुकाये रहती है । पुरुष तरह तरह के उस पर अत्याचार करता है और बनाता है उसे अपनी भर्त्सनाओं का शिकार, पर वह अपने झुके हुये सिर को ऊपर नही उठाती । विवाह के जुए में हारी हुई न जाने कितनी पीड़ित नारियाँ इसी प्रकार पुरुष के सामने अपनी गर्दन झुका कर उसके अत्याचार की अग्नि में अपनी बलि दे रही हैं ! क्या इन अभागिनो का भी कभी उद्धार होगा ?

तुम्हारी अभागिनी बहन

मोहिनी ।

दाम्पत्य-जीवन की जंजीर

बनारस

६-४-४१

मेरी सखी !

अब मै वह कली नही, जो फूली हुई थी। अब मै वह कोयल नही, जो आम की डाल पर बैठ कर कूक मारती थी और अब मै वह तारिका नही, जो रात मे अपनी झिलमिल ज्योति से आकाश को हँसाती थी। कहने के लिये मै अब भी कली हूँ, पर अपने वृन्त से टूटी हुई। कोयल भी ऐसी जिसका वसन्त निकल गया हो, और तारिका भी ऐसी जो ज्योति से शून्य बन गई हो। यदि तुम मुझे देखो सरला तो तुम्हें आश्चर्य होगा, अधिक आश्चर्य !! मुझे देखते ही तुम अपने मन में अवश्य यह सोचने लगोगी कि आखिर इतने अल्प समय मे ही पराग के भार से लदी हुई कलिका सूख क्यो गई ? किन्तु कदाचित तुम यह नहीं जानती सरला, कि नारी के लिये आज का दाम्पत्य-जीवन एक आग है। तुम्ही बताओ बहन, जब जलती हुई आग मे कलिका झोक दी जायगी, तब उसकी क्या हालत होगी ? क्या वह झुलस न जायगी ? क्या उसके वे ओठ काले न पड़ जायॅगे, जिन पर कभी उसकी मुसुकुराहट बिजली की तरह खेला करती थी। मै भी दाम्पत्य-जीवन की उसी आग में झुलस उठी हूँ सरला ? बोलने के लिये बोलती हूँ, चलने के लिये चलती हूँ,

और हॅसने के लिये कभी कभी हॅस भी देती हू, पर उसी प्रकार जिस प्रकार यंत्र से परिचालित तसवीरे! हृदय मे पैठकर देखो सरला, तुम्हें धुऍ के अतिरिक्त कुछ न दिखाई पड़ेगा। ज्यो ज्यो विवशता की वेदना से मन मथता जा रहा है, त्यो त्यो धुवॉ सघन होता जा रहा है। काश, उस धुऍ के बीच से कोई चिनगारी फूट पडती और फूट कर बाहर निकल सकती!

जानती हो ऐसा क्यो हो रहा है सरला? मैं विवाह के जुए में हारी हुई हूॅ। मै ही नहीं, मेरी ही भॉति सभी स्त्रियो को विवाह के जुये मे हारना होता है। तुम्हे भी इस जुए में अपना सर्वस्व दॉव लगाकर हारना पड़ेगा सरला! वह जुआ ही ऐसा है कि स्त्री की उसमें निश्चय रूप से हार होती है। स्त्री को उस जुए में हारना सिखाया भी जाता है। विवाह के जुए में हारी हुई स्त्री जब दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करती है, तब जानती हो उसकी क्या दशा होती है? वही जो आज मेरी हो रही है। मेरे पास इस समय अपना, कुछ भी नहीं है बहन! यहॉ तक कि हृदय और प्राण भी। सब पर पुरुष-शक्ति ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया है। मै जैसे मास के एक लोथड़े के सदृश हूॅ, और उसमे किसीने कोई यंत्र लगा दिया हो। मैं उसी यंत्र की शक्ति से दिन रात घूमती हूॅ—चलती हूॅ, फिरती हूॅ और हॅसती खेलती हूॅ। जैसी उस यंत्र की प्रेरणा होती है वैसा ही मै काम करती हूॅ। मुझमे और तस्वीर में कुछ भी अन्तर नही है सरला! तस्वीर ही की भॉति मै भी इच्छाओ औ अभिलाषाओ से शून्य बना दी गई हूॅ। दीवालो से घिरे हुए घर' भीतर इस प्रकार बन्दिनी की भॉति रखी गई हूॅ कि अन्तर का हाहा कार दीवालो से टकराकर फिर अपने ही पास वापस चला आता है

कितनी दयनीय स्थिति है इस अभागे जीवन की सरला ! क्या इसका इस जीवन में कभी अन्त हो सकेगा ?—कदापि नही ! विवाह के जुये में हारी हुई नारी के लिये समाज की आज्ञा नही कि वह ऐसे दुखदायी दाम्पत्य-जीवन की जंजीर को तोड कर उससे अपने को बाहर निकाल ले। समाज तो दाम्पत्य-जीवन की जंजीर में बँधी हुई घुट घुट कर मरने वाली नारी को सती कहता है, सती !

सचमुच मेरा दाम्पत्य-जीवन एक लौह जंजीर ही के सदृश है सरला ! मैं अपने को इस जंजीर से चारो ओर से कसकर बँधी हुई पा रही हूँ—उसी प्रकार बँधी हुई पा रही हूँ जिस प्रकार कारागार का एक बन्दी। मुझे घरके भीतर बन्द करके रखना, भोजन बनवाना, सेवा की अग्नि में जलाना, यंत्र की भाँति बच्चे पैदा कराना—यह सब क्या है सरला ? क्या केवल इतने ही के लिये जगत में मेरी सृष्टि हुई है ? क्या मेरे नारी जीवन का केवल यही उद्देश्य है ? यदि हाँ, तो फिर क्यो समाज और राष्ट्र नारी के सामने अपना अंचल पसारते हैं ? क्यो संसार के बड़े-बड़े ज्ञान-वेत्ता यह कहते हैं कि नारी राष्ट्र की जननी है, समाज के लिये शक्ति का वरदान है ! सचमुच नारी राष्ट्र और समाज के लिये शक्ति का वरदान है सरला ! नारीं ही जगत को पूर्ण बनाती है, और बनाती है, समाज तथा राष्ट्र को शक्तिशाली ! जिन देशो ने नारी—जीवन के इस रहस्य को समझा है, उन्होंने नारी को अधिक से अधिक सम्मान भी प्रदान किया है। युरोप, अमेरिका, रूस और जापान इत्यादि देशो का देखो तो नारी-जीवन ! कितना उच्च है, कितना सुन्दर है, और कितना सम्माननीय है ! एक अंगरेज रमणी जहाँ अपने गृहकार्यों का संचालन करती है, वहाँ वह

बड़ी बड़ी सभा सुसाइटियो में भाग लेती और व्याख्यान देती है । एक रूसी महिला जहाँ बच्चे पैदा करती है, वहाँ वह कल कारखाने मे काम करती और अपने जीवन को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर ले जाती है। एक जापोनी स्त्री अपने घर को स्वर्ग तुल्य बनाने के साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे उन्नति करती है। युरोप, अमेरिका और जापान इत्यादि देशो की बात जाने दो सरला ! आज जिस देश और जिस समाज में नारी लौह-वेड़ियो ये जकड़ी हुई है, उसी भारतीय समाज के वैदिक युग पर जरा दृष्टि तो डालो ! स्त्री घर की साम्राज्ञी थी। घरके प्रत्येक व्यक्ति उसका सम्मान करते थे। उसे शक्ति और लक्ष्मी के नाम से सम्बोधित करते थे। नारी का अपमान करना, उसके हृदय को आघात पहुँचाना पाप समझा जाता था, महापाप। नारी अपने दाम्पत्य-जीवन की रानी होती थी। घर और बाहर उतना ही उसका अधिकार था, जितना पुरुष का। अन्तःपुर मे तो उसका अधिकार पुरुष से कई गुना वढ़ जाता था और वह हो जाती थी अन्तःपुर की साम्राज्ञी। ऐसी साम्राज्ञी जिसका हृदय से सब सम्मान करते थे और झुकाते थे जिसके अधिकार के सामने अपना मस्तक। इसी भारतीय समाज में यह था कभी नारी का जीवन ! आज हम जिस अंगरेज रमणी के जीवन की प्रशंसा कर रही हैं, वह भी उसके सामने तुच्छ था, हेय था ! पर आज भारतीय नारी के लिये यह सब स्वप्न की वाते हैं सरला ! नारी शक्ति होगी पुस्तको के पन्ने मे, नारी होगी लक्ष्मी कहीं किसी वेदवाक्य मे, व्यावहारिक रूप में तो उसका जीवन रो रहा है, सिसकियाँ भर कर आँसू बहा रहा है। वाह्य जगत की तो बात ही क्या, अपने अन्तःपुर में भी वह भिखारिणी है, अधिकारवंचिता है। अन्तःपुर

की वस्तुओ और उसमें संचालित होनेवाले कार्यों पर कौन कहे, उसके हृदय और मन पर भी उसका अधिकार नहीं है । वह अपनी इच्छा से कोई काम नहीं कर सकती, हिलडुल तक नहीं सकती । वह हर एक प्रकार से उपेक्षिता है, पीड़िता है । वेद के पश्चात् के बने हुए नियम-ग्रन्थ चिल्ला-चिल्ला कर आदेश देते हैं—'नारी ! तुम पुरुष की सेवा में घुलघुल कर मरो। घुलघुलकर प्राण देने में ही तुम्हारा मोक्ष है, तुम्हारे नारी-जीवन की शोभा है !' नारी तो उन नियम-ग्रन्थो के सिकंजे में फँस कर घुल-घुल कर प्राण दे रही है, किन्तु उसके साथ ही भारतीय समाज भी घुला जा रहा है, अपंगु बनता जा रहा है । वह दिन दूर नहीं, जब यह लँगड़ा लूला समाज भी नारी ही की भाँति अपने चीत्कार से आकाश में रव भरता हुआ दिखाई पड़ेगा ! लौह जंजीर में तड़पती हुई नारी की आह ! समाज को अपने पापो का फल भोगना ही पड़ेगा ।

समाज का यह कुत्सित पाप नहीं तो और क्या है सरला, कि नारी अपने दाम्पत्य-जीवन में बन्दिनी बन कर रहे, विवसी की भाँति दयनीय जीवन बिताये। आखिर नारी के लिये यह किसने व्यवस्था की है? किसने पुरुष के हाथो में अधिक अधिकार देकर उसे उच्छृंखल बना दिया है? इसी समाज ही ने तो ! यदि मै समाज के तरु के नीचे केवल अपने ही को सिसकियाँ भरती हुई देखती तो भाल पर हाथ रख कर सन्तोष कर लेती, किन्तु यहाँ तो समस्त नारी जाति ही चीत्कार करती हुई दिखाई दे रही है। फिर क्या यह नहीं कहा जा सकता सरला, कि समाज अन्धा है, स्वार्थी है, अविवेकपूर्ण है ! मै उस अन्धे समाज से पूछती हूँ, उसने जिन पुरुषों की सुख-स्वच्छन्दता के लिये नारी को दाम्पत्य-जीवन की जञ्जीर मे कस कर

बाँध रखा है, क्या उन्हें शान्ति मिल रही है ? क्या उन्हे सुख प्राप्त हो रहा है ? यदि पारस्परिक कलह, विग्रह और असन्तोष ही का नाम सुख-शान्ति है, तो निस्सन्देह नारी को बन्दिनी बनानेवाले पुरुष सुख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पर बात इसके बिलकुल विपरीत है सरला! नारी यदि अपने जीवन-अधिकार के लिये रो रही है, तो पुरुष उस अशान्ति से बेचैन है, जो अधिकार-वंचिता नारी की फूतकार के कारण घरो में पैदा हो उठी है। चाहे जिस घर के भीतर और स्त्री-पुरुष के मनमें पैठकर देख लो सरला! तुम्हे अवश्य किसी न किसी कोने में दिखाई पड़ेगा—असन्तोष, बेचैनी और व्यथा! कहीं कहीं तो उसका रूप इतना भयानक होगा कि तुम उसे देखकर दाँतो तले उँगली दबा लोगी। दूर की बात नहीं, अपने पड़ोस की ही एक घटना तुम्हे सुना रही हूँ। घटना क्या है, दाम्पत्य-जीवन की जञ्जीर में बँधी हुई सिसक सिसक कर रोनेवाली नारी की मनोव्यथा का चित्र!

रात का समय था। बारह बज रहे थे। मै अपने ऊपर के कमरे में सोई हुई थी। सहसा मेरी नीद खुली और किसी के कराहने का शब्द कानो मे पड़ा। मैने खिड़की खोल दी। शब्द अधिक स्पष्ट हो उठा। वह धीमी धीमी गति से आ रहा था पड़ोस के एक मकान से, जिसमें एक वकील साहब अपनी पत्नी के साथ रहते थे। पत्नी भोली-भाली और सरल प्रकृति की थी। आकृति पर सौन्दर्य था, और आँखो में चमक भी थी। पर कदाचित् वकील साहब की रुचि के अनुकूल वह न थी। वह हमेशा उदास रहती, विपन्न। मैने कभी उसके अधरो पर मुसुकुराहट की रेखा न देखी। वह कभी कभी खिड़की पर आकर खड़ी होती थी। उसकी आकृति को देखते ही उसके हृदय में खेलती हुई व्यथा का अनुभव हो उठता था।

पर वह कभी किसी से कुछ न कहती। भीतर ही भीतर घुटती, पर अपनी वेदना को ओठो पर न लाती। पर मुझसे छिपी न रह सकी वह वेदना। उसके न कहने पर भी मै यह जान गई थी कि मेरी ही भाँति वह भी अधिकार वंचिता है, अधिक प्रपीड़िता है।

हाँ, तो धीमी धीमी गति से कराहने का शब्द आ रहा था। मै यह जानती थी कि वकील साहब वेश्यागामी हैं, और रात मे दो दो बजे के पश्चात् घर लौटकर आते हैं। मैं कान लगाकर उस शब्द को सुनने लगी। धीरे धीरे शब्द के तार टूटने लगे और कुछ देर के पश्चात् बिलकुल सन्नाटा। मेरे हृदय मे तरह तरह के विचार उठने लगे। मैंने सोचा, बुलाऊँ। पर उस रात में बुलाने का साहस न हुआ और मै सङ्कल्प-विकल्प के झूले पर झूलती हुई चारपाई पर जाकर पड़ रही। अभी कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि किवाड़ खुलने का शब्द कानो मे पड़ा। मै फिर खिड़की के पास जा पहुँची और सावधानी से कान लगाकर सुनने लगी। फिर किवाड़ खुलने के शब्द सुनाई पड़े। ये शब्द उस कमरे के किवाड़ के थे, जिसमे से कराह आ रही थी। मैं समझ गई, वासना की हाट से लौटकर वकील साहब आये हैं। कमरे में अन्धकार था, क्योंकि वकील साहब के कमरे में प्रवेश करने के साथ ही मैंने देखा, खिड़की के मार्ग से प्रकाश बाहर निकल रहा है, और साथ ही कानों में ये शब्द पड़े,—"चलो अच्छा हुआ! जीवन की सारी चिन्ता दूर हो गई!"

कहनेवाले वकील साहब थे। मै समझ न सकी कि वकील साहब की इस बात का मतलब क्या है? मै चिन्तापूर्वक कान लगाकर फिर कुछ सुनने का प्रयत्न करने लगी। पर कुछ सुनाई न पड़ा। बत्ती बुझ उठी

और फिर किवाड़ भिड़ने के शब्द हुए। मैं चिन्तापूर्वक चारपाई पर जाकर पड़ रही। नारी-जीवन के एक एक दयनीय चित्र आँखो के सामने आने लगे। पर आँखे किसी पर स्थिर न होती थीं। रात इसी प्रकार सङ्कल्प-विकल्प में बीत गई। सबेरा होते ही मैने देखा, वकील साहब के घर से उनकी पत्नी की अर्थी निकल रही है। उन्होने लोगो से बताया था कि रात में उसके पेट में भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई और वह चल बसी। वकील साहब एक प्रभावशाली मनुष्य हैं। सबने उनकी बात सच मान ली। पर मेरे हृदय में एक द्वन्द सा उपस्थित हो उठा। मैं गुप्त रूप से पता लगाने लगी कि आखिर वकील साहब की पत्नी की मृत्यु किस प्रकार हुई ? मैने इसके लिये वकील साहब की महरिनि को अपना साधन बनाया। आखिर उससे मुझे सब कुछ ज्ञात हो गया। बेचारी वह अबला अपने जवीन से व्याकुल होकर रज्जु के झूले पर झूल गई थी। रातको जब वकील साहब वेश्या के घर से लौटकर आते, तब वह उनके इस कृत्य का विरोध करती। उसके इस विरोध के परिणाम स्वरूप घर मे प्रायः कलह की चिनगारियाँ छिटका करतीं और वकील साहब कहा करते, बदक़िस्मत फाँसी लगाकर मर भी नही जाती !'

सचमुच वह फाँसी लगा कर मर गई सरला, अपने आकुल जीवन का सदा के लिये सर्वान्त कर गई ! न जाने कितनी बन्दिनियाँ इसी प्रकार प्रति दिन अपने जीवन का सर्वान्त करती हैं। भारतीय दाम्पत्य-जीवन की वेदिका पर समाज की यह बलि उसे न जाने किस ओर ले जा रही है। वह दिनो दिन उजडा जा रहा है, कंगाल होता जा रहा है। पर फिर भी

उसके हाथ नही रुक रहे हैं। उसके हवन कुण्ड की आग नही बुझ रही है! कदाचित् इसलिये कि समाज के संरक्षक पुरुष यह नहीं चाहते कि समाज के हाथ रुकें, उसके बलि-कुण्ड की आग धीमी हो। यदि समाज अपने हाथो को रोक ले और दे दे दाम्पत्य-जीवन में इन बन्दिनियों को समानता के अधिकार तो फिर पुरुषो की चेरी कौन बने? उनकी स्वच्छन्द प्रकृति का शिकार कौन हो? कौन उनकी सेवाग्नि में डाल कर करे अपने जीवन को भस्मीभूत? आखिर इसी के लिये तो पुरुष युग-युगान्तर से नारी को अपनी चेरी बनाते चले आ रहे हैं। चेरी बनाने के लिये ही तो विवाह की सृष्टि की गई है, और फिर विवाह की बागडोर भी तो पुरुषो ने अपने ही हाथो में रखी है। पुरुष अपनी इच्छानुसार स्त्री का चुनाव कर सकता है, पर स्त्री को इस बात का अधिकार नहीं कि वह अपनी इच्छानुसार पुरुष का चुनाव करे। इतना ही नही, पुरुष चाहे कई विवाह कर सकता है, पर विधवा स्त्री के लिये कलप-कलप कर जान दे देने ही की आज्ञा है। इतना ही नही सरला, जरा और आगे बढ़कर देखो! नारी को चेरी बनाने के लिये ही तो सतीत्त्व भाव का प्रचार किया गया है। धार्मिक पुस्तकों के पन्ने उलट उलट कर देखो! पुरुष के लिये जहाँ अनेक पत्नियाँ मौजूद हैं, वहाँ नारी के लिये लँगड़े-लूले पति के साथ जीवन खपा देने का आदेश है। जब पुरुषो ने स्त्रियो को अपनी गुलामी के बन्धन मे बाँध रखने का इतना स्वार्थ-पूर्ण प्रयत्न किया है, तब वे क्यो समाज से कहने लगे कि वह नारी के ऊपर से अपना बन्धन ढीला कर दे। यह तो नारी का काम है कि वह कमर कस कर तैयार हो जाय और अत्याचारी समाज

के छप्पर मे आग लगाकर पुरुषो से कह दे कि नारी पुरुषो की भोग्य वस्तु नही, राष्ट्र की जननी है और है शक्ति का वरदान !

क्या दाम्पत्य-जीवन की जजीर में कलपती हुई ये वन्दिनियाँ एक साथ यह आवाज लगा सकेंगी...... ?

तुम्हारी बहन

मोहिनी।

कसाई का खूँटा

बनारस

८-४-४१

मेरी सखी !

अभी तुम कुमारी हो, अपने जीवन की रानी हो। मेरी भाँति अभी तुम्हारे पंख को किसी की छुरी की धार नहीं छू सकी है। तुम स्वतंत्र हो, चाहे जहाँ उड़ सकती हो। पर नारी होने के कारण तुम्हे भी एक दिन विवाह का फन्दा अपने गले में डालना ही होगा। तुम चाहो या न चाहो, पर समाज अपनी इच्छानुसार तुम्हारे गले में भी विवाह का फन्दा डालने का प्रयत्न करेगा ही। वह अपनी ही इच्छानुसार तुम्हारे लिये जीवन का एक साथी खोज देगा, और उसी के हाथ में तुम्हारे गले का फन्दा देकर उससे कहेगा कि ले जाओ, इसे दाम्पत्य-जीवन के खूँटे मे बाँध दो। तुम्हारी कुछ न सुनी जायगी बहन! तुम रोती हुई चली जावोगी, और उस खूँटे मे अपने को बँधा लोगी। फिर तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो हम सबकी हो रही है। देखती नही, दाम्पत्य-जीवन के खूँटे में बँधी हुई आज कितनी गायें तड़प रही हैं, हुंकार मार रही हैं! पर वश नही, चारा नही। एक बार बँध गईं तो बँध गईं। घुट घुट कर मरे, भीतर ही भीतर आह के अङ्गारो से जले, पर इनके लिये समाज का यह आदेश नहीं कि ये इस बन्धन से अपने को मुक्त कर लें। समाज ने जहाँ पीड़ित से पीडित अन्यान्य जीवो की जीवन्मुक्ति के लिये तरह तरह के उपाय बताये

हैं, वहाँ उसने कसाई के खूँटे में बँधकर तड़पने वाली इन गायों के लिये कुछ व्यवस्था न की, कुछ भी व्यवस्था न की सरला! बेचारी अपनी बड़ी बड़ी आँखों में आँसू भरकर समाज की ओर देखती हैं, उसके सामने अपनी मनोकाक्षा प्रकट करती हैं, पर समाज उनकी ओर आँख उठाकर देखता भी नहीं। कितना उपेक्षित है उनका जीवन! कदाचित् ही जगत में कोई इतना उपेक्षित हो, इतना पीड़ित हो, इतना दलित हो!

सावधान सरला! देखना, तुम भी इन तड़पने वाली गायों ही की भाँति अपने को इस खूँटे मे न बँधा लेन! मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि तुम विवाह करना ही नहीं, विवाह करना अवश्य, पर ऐसा विवाह न करना कि दाम्पत्य-जीवन तुम्हारे नारी-जीवन के लिये कसाई का खूँटा सिद्ध हो। यह तभी हो सकता है बहन, जब तुम समाज में प्रचलित रुढ़ि-बन्धनो को तोड़ने का साहस करोगी और जब तुम विवाह के सम्बन्ध में समाज की दी हुई आज्ञाओं को ठुकरा कर अपने लिये स्वयं अपना वर चुनोगी। नारी-जीवन की सारी आपदाओं की जड़ यही है सरला! यही से नारी दुःख के अथाह समुद्र मे अपना पैर रखती है। नारी जब यहाँ भटक जाती है, तो जीवन पर्यन्त भटकती ही जाती है। यही तो है वह स्थान, जहाँ से नारी के जीवन का सुख-स्रोत बहता है। समाज इसी स्थान पर पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाएँ डाल कर उसके मुख को बन्द कर देता है। तुम्हे समाज के हाथ को पकड़ना पड़ेगा, पकड़ना पड़ेगा अपने लिये और अपनी समस्त बहनों के लिये। यदि तुम्हारी तरह समाज की सौ दो सौ बहने स्वच्छन्द समाज के हाथ को पकड़ कर उससे यह कह दे कि विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारी सम्मति नहीं, मेरी सम्मति मूल्यवान है, तो मैं समझती

हूँ कि नारी के दयनीय जीवन का बहुत कुछ अन्त हो जाय। नारी ही के दयनीय जीवन का अन्त क्यो सरला ! पुरुष भी सुख शान्ति का अनुभव करने लगे, सर्वोच्च दाम्पत्य-जीवन बिताने लगें। विवाह के सूत्र में बँधने वाले स्त्री पुरुष जब अपनी इच्छा से बँधेगे, और बँधेगे अपना अपना हृदय लेकर, तब होगा दोनो का कितना सुन्दर जीवन ! दोनों अपने दाम्पत्य-जीवन के ऑगन में एक दूसरे के मित्र होगे और होगे एक दूसरे के विश्वस्त सहचर। दोनो के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम होगा, विश्वास होगा, और होगी सहानुभूति। दोनो का वह दाम्पत्य-जीवन ! उसमे कलह, विग्रह और अशान्ति की छाया तक किसी को न मिलेगी।

समाज की दृष्टि में तुम्हारा यह साहस चाहे अधिक अनुचित सिद्ध हो सरला, पर नैतिकता और मानवता तुम्हारे इस साहस को सदा प्रोत्साहन ही देगी। तुम स्वयं नारी के दयनीय जीवन पर विचार करके देखो ! मानवता तुम्हारे अन्तर मे इसके लिये अवश्य ज्वार उत्पन्न करती हुई दिखाई देगी ! समाज की तरह नैतिकता और मानवता अन्धी नही। नैतिकता नैतिकता है और मानवता मानवता। दोनो का उद्देश्य है अत्याचार का सर्वान्त करना, पाशविकता के विरुद्ध क्रान्ति को जगाना। नैतिक और मानवीय नियमो के अनुसार नारी को विवाह के सम्बन्ध में अपनी इच्छा का अधिकार मिलना ही चाहिये और उसी प्रकार मिलना चाहिये जिस प्रकार पुरुषों को प्राप्त है। किसी भी पुरुष के साथ विवाह करने के पहले उसे अपनी कसौटी पर कसने का काम नारी का है, न कि समाज का और उसके संरक्षकों का। विवाह कोई घर-घरौंदा तो नहीं कि अभी बनाया और अभी समाप्त कर डाला। उसका सूत्र तो

जीवन पर्यन्त जीवन के साथ लिपटा रहता है । फिर क्यो न जीवन के मार्ग पर चलने वाले जीवनसाथी की अपनी इच्छा के अनुसार तलाश की जाय! युरोप, अमेरिका और जर्मनी इत्यादि देशो की स्त्रियाँ विवाह के सम्बन्ध में क्या करती हैं ?—यही तो-वे अपनी इच्छानुसार ही अपने पतियों का चुनाव करती हैं । उन पर इस सम्बन्ध मे समाज का कोई अनुशासन नहीं, कोई प्रतिबन्ध नहीं । अनुशासन और प्रतिबन्ध का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता । प्रश्न इसलिये नहीं उठता कि युरोपीय समाज में नारी दाम्पत्य जीवन की एक मात्र स्वत्वाधिकारिणी समझी जाती है । इसीलिये दाम्पत्य जीवन के निर्माण में नारी को पुरुष से भी अधिक स्वाधीनता प्राप्त है । इन देशों मे नारी को सब प्रकार से यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी इच्छानुसार चाहे जिस प्रकार से दाम्पत्य-जीवन का निर्माण करे । वैदिक, रामायण, और महाभारत काल में भारतीय नारी को भी यही अधिकार प्राप्त था । वेदो में स्पष्ट रूप से आदेश है—'सुन्दर स्वरूपवाली वह नारी अच्छी है, जो अनेक मनुष्यो में से अपने मित्र को स्वयं चुनती है ।' महाभारत और रामायण काल का होनेवाला स्वयम्वर क्या था ? उन दिनों स्वयम्वर ही के द्वारा नारी अपने पति का चुनाव करती थी । जब कोई नारी विवाह के योग्य होती थी तब उसके संरक्षक दूर दूर से ऐसे लोगो को निमन्त्रित करते थे, जो वीर होते थे, गुणशाली होते थे और होते थे मेधावी । नारी स्वयं इन एकत्र मनुष्यो के गुणो की परीक्षा करती थी और फिर उसी के अनुसार करती थी अपने पति का चुनाव । अपनी इच्छा से अपने पति का चुनाव करके जब वह गार्हस्थ्य-जीवन मे प्रवेश करती थी तब होती थी हृदय से उसकी आज्ञा कारिणी ! प्रेम के सूत्र में बँधी हुई वह उसके पीछे छाया

की भाँति डोलती थी और अपने दाम्पत्य-जीवन में सम्पूर्ण रूप से अपने को मिला देती थी !

किन्तु पति के चुनाव मे कहाँ है आज नारी को वह अधिकार प्राप्त ! आज का विवाह तो नारी के लिये कसाई के उस खूँटे के सदृश है, जिसमें कलपती हुई गाय वलि के लिये जबर्दस्ती बाँध दी जाती है। विवाह के सम्बन्ध में पुरुषो की ओर से अनेक प्रकार के विज्ञापन समाचार पत्रों में प्रकाशित होते हैं। उन विज्ञापनों के द्वारा कोई स्वर्ग की परी जैसी बहू चाहता है और कोई चाहता है, पढ़ी-लिखी, सुशक्षिता तथा रूपगर्विता। तुमने डाली है दृष्टि इन प्रकाशित होने वाले विवाह-विज्ञापनो पर सरला ! अगर तुम इन विज्ञापनो को देखो तो तुम्हें यह कहना पड़ेगा कि विवाह के लिये यह आवश्यक है कि नारी में संसार के सभी अच्छे गुण मौजूद हों—सौन्दर्य, सुशीलता, पातिव्रत, विज्ञता, नृत्य कला, आदि आदि। पर इन पुरुषो से कोई यह नहीं पूछता कि विवाह के लिये पुरुष में भी कुछ गुण होने आवश्यक हैं या नहो ! पुरुष चाहे कायर हो, लम्पट हो, और हो अज्ञ, पर वह सदैव सुन्दरी और सुशील नारी की ही अपने हृदय में कामना करता है। विवाह के पूर्व वह नारी को भली प्रकार ठोक बजाकर देख लेता है। वह अन्धी तो नहीं है, कुरूप तो नहीं है, और उसमें कोई दुर्गुण तो नहीं है ! आज-कल के पढ़े-लिखे नवयुवक तो लड़की का मुख देखे विना विवाह ही नहीं करते। उनकी दृष्टि मे नारी के चुनाव की कसौटी है नारी का सौन्दर्य और उसका सुमधुर आलाप। वे नारी के हाट मे स्वतंत्रतापूर्वक इसकी खोज करते हैं। एक को देखते हैं, दूसरी को देखते हैं, तीसरी को देखते हैं, और फिर भी इसी प्रकार सैकड़ो को देख जाते हैं। जब किसीको चुनते हैं

तन्त्र चुनाव मे उन्हीं की इच्छा की प्रधानता होती है । बेचारी लड़की से पूछा तक नही जाता कि चुनने वाला उसे भी पसन्द है या नहीं । वह चुपचाप विवाह की डोरी में कसकर बाँध दी जाती है । न जाने नारी के हृदय पर ऐसा कौनसा कुसंस्कार पड़ा है सरला, कि वह चुपचाप उसमे अपने को बँधा लेती है । वह देखती है कि उसके जीवन के साथ अत्याचार किया जा रहा है, और किया जा रहा है उसके मानवी अधिकारों पर प्रहार, पर फिर भी वह नही बोलती, जुबान खोल कर उसका विरोध नही करती । नारी की इस मौनिमा ने ही उसे पतन के महा सागर मे ढकेल दिया है । ज्यों-ज्यो नारी विवशता के घूँट पीती जा रही है, त्यों-त्यो समाज उसे और भी अत्याचार की आग में झोकता जा रहा है। नारी को अब शीघ्र से शीघ्र सजग होना चाहिये, सजग हो जाना चाहिये अपने लिये और चीत्कार करते हुए समाज के लिये। यदि नारी सजग न होगी तो इस भारतीय समाज की धज्जी धज्जी उड़ जायगी, और फिर रह जायगा उसका कंकाल, केवल कंकाल !

नारी को शीघ्र से शीघ्र विवाह-विद्रोह करना ही चाहिये । आज जिस प्रकार पुरुष सैकड़ो हजारो लड़कियो को देखने के बाद अपने जीवन की रानी का चुनाव करते हैं, उसी प्रकार लड़कियो को भी स्वाधीनतापूर्वक अपने जीवन के राजा का चुनाव करना चाहिये । विवाह के लिये यदि पुरुष नारी को पसन्द करता हो और पुरुष नारी को पसन्द न हो तो उसे चाहिये कि वह स्पष्टतापूर्वक विवाह के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे । उस प्रस्ताव को अस्वीकार करने मे नारी को अपने संरक्षको का चरंमात्र का भी संकोच न करना चाहिये । यदि नारी यहाँ साहस से

काम न लेगी तो फिर वह आजीवन कलपती ही रहेगी—उसी प्रकार कलपती रहेगी जिस प्रकार आज विवाह के खूँटे में बँधी हुई अनेक गाये तड़प रही है। इन तड़पने वाली नारियो का यही तो अपराध था कि इन्होने समाज के आदेशो के सामने अपना मस्तक झुका कर उसकी इच्छानुसार ही अपने को विवाह की जंजीर में बँधा लिया। समाज स्त्री-पुरुषो को केवल विवाह की जंजीर मे बाँधना जानता है। वह चाहता है विवाह के द्वारा किसी न किसी प्रकार एक पुरुष को एक नारी प्राप्त हो जाय। वह विवाह का अभिनय करके केवल अपनी इसी इच्छा की पूर्ति करता है। इसीलिये तो वह कब्र मे पैर फैलाकर सोनेवाले वृद्धो के हाथो में भी हल्दी लगा देता है। बेचारी नारी मरे या जीवित रहे, इसकी समाज को चिन्ता कहाँ? समाज तो केवल अपना काम करना जानता है, और वह अपना काम बड़ी स्वच्छन्दता के साथ करता जा रहा है। प्रति वर्ष वह करोड़ बालिकाओ का हाथ वृद्धो के हाथ मे दे रहा है, और मिला रहा है, अनमेल नर नारियो को आपस मे। स्वस्थ के साथ रोगी का संयोग, कुरूप के साथ सुन्दरी का गठ-बन्धन। समाज की इस स्वच्छन्दता के कारण उसके आँगन मे चीत्कार की बाढ़ होती ही जा रही है। नारी अलग कलप रही है, पुरुष अलग अपना असन्तोष प्रगट कर रहा है। दोनो के जीवन से शान्ति उड गई है और दोनो ही क्रोधोन्मत्त पक्षी की भाँति अपने जीवन-आकाश में काँय-काँय कर रहे हैं। पर फिर भी समाज की स्वच्छन्दता जारी है, उसके स्वेच्छाचार मे तीव्र प्रगति है।

समाज की यह स्वेच्छाचारिता नारी के लिये बडी ही भयानक है,

बड़ी ही दुखद है सरला ! समाज की स्वेच्छाचारिता का शिकार पुरुष तो अपने जीवन को असन्तोष की आग से बाहर निकाल लेता है, पर बेचारी नारी जीवन-पर्यन्त उसके दुखद परिणामो के सिकंजे मे फँस कर छटपटाती ही रहती है । उसकी शारीरिक और मानसिक मनोवेदना का चित्र ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हृदय के कोने-कोने में वेदना की भयानक आँधी दौड़ पड़ती है । यदि तुम उन हृदय-दुखद चित्रो को देखना चाहती हो सरला, तो तुम उन नारियो के मन के भीतर घुसो, जो इस समय सचमुच विवाह के खूँटे में बँधी हुई भूखी गाय की भाँति छटपटा रही हैं । मैंने इस प्रकार की तड़पने वाली कुछ स्त्रियो के चित्रो को एकत्र किया है । उनमें से कुछ को मैं तुम्हे यहाँ दिखाने का प्रयत्न करूँगी । वेदना के ये चित्र तो केवल नाम मात्र के हैं, इससे भी अधिक है उन नारियो के मन की व्यथा, इससे भी अधिक है उनके अन्तर का हाहाकार । कदाचित् इन दो-एक चित्रो को देखकर तुम उनके अन्तःपुर के हाहाकार का पता लगा सको, उनकी मनोव्यथा को ठीक-ठीक समझ सको, और समझ सको आज के उस विवाह को, जो स्पष्ट स्वरूप से नारी-जीवन के साथ बलात्कार कर रहा है ।

हाँ तो देखो नारी की मनोव्यथा के उन चित्रो को । ये चित्र कपोलकल्पित नहीं, सत्य हैं सरला—उतने ही सत्य, जितनी सत्य है आज नारी की मनोव्यथा ।—वह फूल सी हँसती हुई बीस बाइस वर्ष की एक युवती है । अंग-अंग में सौन्दर्य, रग-रग मे उन्माद । नाम है उसका रम्भा । इसी शहर मे एक सम्भ्रान्त कुल मे उसका हुआ है विवाह । घर में सब कुछ है—धन, दौलत, प्रतिष्ठा और सम्मान, पर फिर

भी वह मुरझाई रहती है, उदास । उसमें अटूट सौन्दर्य है, पर वह कभी हँसता नही, उसमें गहरा उन्माद है, पर वह कभी छलकता नहीं । वह अपने सौन्दर्य और अपने उन्माद को बटोरे हुए मन ही मन मरी जा रही है, वेदना की ज्वाला से झुलसी जा रही है । आजतक भी उसके कुटुम्बी उसकी वेदना को न जान सके । यदि वह अपनी मनोव्यथा को भीतर ही भीतर दबाती रही, तो कदाचित् ही कभी कोई उसका कुटुम्बी उसकी मनोव्यथा को जान सके, उसके अन्तःपुर में नाचती हुई पीड़ा को पहचान सके ।

किन्तु मै जानती हूँ उसकी मनोव्यथा को सरला ! मै जानती हूँ इसलिये कि मैने इस प्रकार की आपदग्रस्त नारियो के जीवन-चित्रो को एकत्र करने का प्रयत्न किया है । इसी प्रयत्न में उसकी भी वेदना का चित्र मेरे हाथ लगा और मै देख सकी उसके अन्तःपुर मे नाचती हुई व्यथा को । उसने जिन करुण शब्दो मे अपनी मनोव्यथा का चित्र खीचा है, उसे मैं ज्यो का त्यो तुम्हारे सामने रख देना चाहती हूँ । देखो—वह एक रात थी । उस रात का नाम है दूसरे शब्दो में नारी की आकाक्षा । इसीलिये कदाचित् लोग उस रात को सुहागरात भी कहते हैं । नारी अपनी उस सुनहली रात के आँगन में असंख्य अभिलाषाओ और आकांक्षाओं के भार से लदी हुई प्रवेश करती है । वह अपनी उस रात के आँगन मे अपने जीवन-सहचर के सामने हृदय की समस्त आकाक्षाओ की ग्रन्थि को बारी-बारी से खोल कर कितना सुख लूटती है, कितनी प्रसन्न होती है । मै भी उस सुनहली रात के आँगन मे अपनी आकाक्षाओ के हाट लगाकर अपने जीवन-सहचर की प्रतीक्षा कर रही थी । कह नहीं

सकती, मन में कितनी मधुर उमंगे थीं, कितनी मधुर अभिलाषाये थी। रात के दस, ग्यारह, बारह और एक, दो, तीन बज गये, पर वे न आये। हृदय में एक निराशा हुई और निकल पड़ी अन्तर से एक उसाँस। अभिलाषाओ के हाट को सिमेट कर चुपचाप पड़ रही। सोचा, कदाचित् कल मिले, कल।

पर कितने 'कल' बीत गये और न मिले, न मिले। मिलने को कौन कहे, वे जैसे मेरी छाया से भागते थे। घर मे उसी समय आते जब मेरे सास ससुर होते, मेरी ननँदे होतीं। इन सबके सामने मेरे मुख पर होता एक हाथ का लम्बा घूँघट। फिर मैं उनसे कुछ बोल कैसे सकती? कुछ पूछ कैसे सकती? मैं मन ही मन रोती थी और आह की ज्वाला से जलती थी। साथ ही साथ यह सोचती भी थी कि ऐसा क्यो है, क्यो? क्यो वे मेरी छाया से भागते है? क्यो वे मेरी ओर आँख उठा कर भी नही देखते? कही मुझमे कुछ अभाव तो नही है? कही उनका मन किसी दूसरे के प्रेम-जंजीर मे तो नही जकड़ा है? मेरे मनमे सदा इसी प्रकार की विचार-तरंगे उठा करती और अपने ही आप गायब भी हो जाया करतीं। दिन बीतने लगे, राते कटने लगीं। इन बीतने वाले दिनो और कटने वाली रातो के साथ ही साथ मेरी वेदना का ज्वार भी बढ़ता गया और मैने मन ही मन निश्चय किया, मै उनसे अवश्य मिलूँगी, उनसे अवश्य एक बार इसका कारण पूछूँगी। यदि उन्हे मुझे इस प्रकार आह की ज्वाला मे जलाना था, वेदना के हथौडे से मारना था, तो उन्होने मेरे साथ विवाह क्यो किया? क्यो मुझे अपने जीवन की जंजीर मे बाँधा? मेरी सुहागरात सूनी चली गई! क्या सम्पूर्ण जीवन भी सूना चला जायगा?

मै अपने निश्चय के अनुसार उनसे मिलने का प्रयत्न करने लगी। आखिर एक दिन मुझे अवसर मिल गया। गर्मी के दिन थे और एक बज रहा था। वे बाहर के कमरे मे सो रहे थे। घर मे कोई न था। सास और ननँदे बाहर गई थी, एक दूसरे मनुष्य के घर। मै चुपके से उनके कमरे में जा पहुँची और भीतर से किवाड़ की जंजीर बन्द कर उनकी चारपाई के पास खड़ी हो गई। आहट पाकर उनकी ऑखे खुली और वे उठकर बैठ गये। उनके सामने थी मै। वे कुछ घबड़ाये, परीशान हुए। मैने देखा उनके अंग-अंग से पसीने की धार सी छूट उठी। मेरा सौन्दर्य, मेरा उमडा हुआ यौवन! उन्होने एक बार मेरी ओर देखा और फिर चिन्तामग्न हो मस्तक झुका लिया। मेरी ऑखो मे ऑसू थे, हृदय में वेदना। मैं सोचने लगी—आह! कारण क्या है इनकी इस चिन्ता का? क्यों ये मुझे देखते ही आकुल हो उठे, पत्ते की भॉति विकंपित हो गये? सौन्दर्य के भार से लदी हुई नारी को देखकर तो पुरुष की रगो मे बिजली दौड पडती है। फिर इनकी रगो मे वह बिजली क्यो नही दौड़ी? क्यो नहीं इनके हाथ मेरी ओर आगे बढे? क्या ये मनुष्य नही, मनुष्य नहीं।

वे स्वयं चिन्ता के भार से लदे हुए बोल उठे--रम्भा! मै मनुष्य नहीं। मैने जान बूझकर केवल अपने पुरुषार्थ की झूठी मर्यादा के लिये तुम्हारी आकांक्षाओ का खून किया है और पीसा है तुम्हें डालकर अपने अन्याय की चक्की में। देखो मेरी ओर! तुम मेरे सामने खडी हो और मै पराजित को भॉति बैठा हुआ हूॅ। मेरी रगो मे न बिजली है, न हृदय मे उमंग। मेरा विवश जीवन। तुम मुझपर दया करो रम्भा, दया। उनकी एकएक बात मेरे हृदय मे तीर की भॉति घुस रही थी, मुझे आहत बना

रही थी, किन्तु जब मैने देखा कि वे ऑसुओ से लदी हुई आँखो को लेकर मेरे पैरो की ओर झुक रहे हैं, तब मै सजग हो उठी। मै वज्र की भॉति हृदय बनाकर उनकी चारपाई पर बैठ गई। मैने धीरे से अपना ॲचल उठा-कर उनकी ऑखो के ऑसू पोछ दिये। पर मेरी ऑखो का आँसू कौन पोछे? यह क्या कोई बता सकता है बहन! वे बेचारे बारबार अपने रूमाल से मेरी आँखो का ऑसू पोछते हैं, पर न जाने क्यो उससे मेरी ऑखो को ठण्डक नही मिलती, मेरा जलता हुआ हृदय शान्त नही होता।

यह है उस बहन की मनोव्यथा का चित्र सरला! ऐसे न जाने कितने चित्रों मे नारियो का रुदन और हाहाकार 'हाहाकार' कर रहा है। क्या ऐसी रोती हुई नारियो के लिये समाज ने कोई व्यवस्था की है? क्या है ऐसा कोई सामाजिक विधान जो इस प्रकार की वेदना-जंजीरो को तोड़ने का उन्हें आदेश देता हो? क्या इस प्रकार जान-बूझकर किसी नारी के जीवन को आग में झोकना अपराध नही? क्या है ऐसे अपराधियो के लिये समाज जी ओर से दण्डाज्ञा? दण्डाज्ञा है सरला, दण्डाज्ञा है। पर जानती हो किसके लिये? उन स्त्रियो के लिये, जो इस समय विवाह के स्वेच्छाचार से कसाई के खूँटे मे बॅधी हुई गाय की भॉति तड़प रही हैं। यदि वे वेदना से व्यथित होकर हुंकार करती हैं, यदि वे उस जंजीर को तोड़ने के लिये हाथ पैर हिलाती हैं, तो होता है उन्हीं के सिर पर समाज की दण्डाज्ञा का प्रहार। ऐसी नारियो को समाज अपने अंक में स्थान भी नहीं देना चाहता। वह उन्हें कहता है कुत्सिता, वेश्या, और दुराचारिणी। समाज के इस दुराचार के कारण न जाने कितनी पीड़िता बहने उसे छोड छोड़ कर उससे अलग हो गई और बिता रही हैं

वेश्या का जीवन। समाज की छाती पर पाप चढ़ रहा है, व्यभिचार की वृद्धि हो रही है, पर फिर भी समाज नारियों के बन्धन को नहीं ढीला कर रहा है, उन्हें अपने सिकंजों से नहीं मुक्त कर रहा है। समाज और समाज के नर पुंगवों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिये कि जब तक सामाजिक व्यवस्थाओं के नाम पर नारियों के ऊपर होनेवाले अत्याचार बन्द न होंगे, तबतक पाप की स्याही इसी प्रकार उसके मुख पर पुतती जायगी, वेश्यायें बढ़ती जायेंगी और घुसता जायगा उसके कमर में इनके पाप का तेज छुरा। आखिर यह अपराध तो उसीका है! वह अपने भयानक अपराधों के द्वारा जिस तेज छुरे की सृष्टि कर रहा है, वह नहीं जानता कि वह उसी की कमर में घुसेगा और उसीके जीवन का सर्वान्त करेगा।

तुम्हारी पीड़िता बहन

मोहिनी

मालिक की मिल्कियत

बनारस

८—४—४१

मेरी अन्तरात्मा !

हॉ तुम मेरी अन्तर-आत्मा हो सरला, मेरे हृदय की शक्ति हो। इसीलिये मैंने तुम्हारे सामने अपने अन्तर का इतिहास भी खोल दिया है। उस इतिहास के एक-एक पन्ने को खोलकर मै तुम्हें दिखाऊँगी और दिखाऊँगी वेदना की उन तस्वीरो को, जो उन पन्नो मे चित्रित की गई है। तुम उन तस्वीरो मे देखोगी नारी का रुदन, नारी का हाहाकार और नारी का मनस्ताप। साथ ही तुम देखोगी पुरुष का अत्याचार, उसकी स्वेच्छा-चारिता का अभिनय। कितने आश्चर्य की बात है, कितने दुःख का विषय है। सृष्टि के समस्त भार को लादे हुए जो नारी अनन्त की ओर चली जा रही है, वही ऑसू बहाये, वही मनस्ताप की ज्वाला मे जले और वही करे अत्याचार की अग्नि मे अपनी शक्तियो का हवन। सृष्टि को विकास और शक्ति का दान देनेवाली नारी जब हाहाकार को अपने जीवन मे लपेटे रहेगी तब कैसे हो सकता है सृष्टि का विकास, कैसे हो सकते है सृष्टि की गोद मे खेलने वाले समाज और राष्ट्र बलशाली ? डालो जरा सृष्टि के ऊपर अपनी नजर, देखो जरा सृष्टि के समाज और राष्ट्रो की ओर। सृष्टि की गोद लॅगड़े-लूले और मृतप्राय सन्तानो से

भरती जा रही है, समाज अपाहिज बनता जा रहा है, और राष्ट्र कर रहा है चीत्कार। मनुष्यों की सारी दुनिया से शान्ति निकलती जा रही है, चेतना उड़ती जा रही है। पुरुष जैसे दानव से हो उठे हैं। अधिकार और स्वाधीनता के नाम पर एक दूसरे का खून बहा रहे हैं, कर रहे हैं परस्पर एक दूसरे का रक्तपात। सारी सृष्टि धूमिल पड़ती जा रही है। चारो ओर एक अंधकार, एक सघन कुहरा। अंधकार से ढॅके हुए संसार मे सभी बिलबिला रहे है, सभी तडप रहे है। यह है नारी की फूतकार, उसकी आह की ज्वाला का प्रभाव। नारी सृष्टि की शक्ति है, समाज और राष्ट्र की जननी है। जब 'शक्ति' और जननी बेड़ियो मे बॅधी हुई तड़पती रहेंगी, आह की फूतकार छोड़ती रहेगी, तब कैसे सुखी हो सकता है समाज, और कैसे बलशाली हो सकता है राष्ट्र।

सचमुच सरला, आज नारी बेड़ियों से जकड़ी हुई हैं—उसी प्रकार जकड़ी हुई हैं, जिस प्रकार कारागार का एक बन्दी। यदि तुम्हे विश्वास न हो तो आकर मेरे घर देख लो। सचमुच मेरे पैरो मे बेड़ियॉ पड़ी हैं और मै बिता रही हूॅ बन्दिनी की भॉति अपना जीवन। बन्दिनी भी एक ऐसी, जिसके पैरो में पड़ी हुई बेडियो के कटने की आशा सम्पूर्ण रूप से मिट चुकी हो। मजाल क्या मै ड्योढ़ी के बाहर एक कदम रखूॅ। घर के ही भीतर रहने का मुझे आदेश है। जिस प्रकार घरमे मेज, कुर्सी, पलंग, बर्तन, भॉड़े इत्यादि गृहस्थी के सामान हैं, उसी प्रकार मुझे भी गृहस्थी का एक सामान समझ लो। उन सामानो और मुझमे अन्तर है तो केवल इतना ही कि संसार की दृष्टि मे वे निर्जीव और मै सजीव हूॅ, पर अपनी दृष्टि में तो उन सामानो से भी मै अपने को अधिक निर्जीव समझती हूॅ।

जिस प्रकार गृहस्थी के सम्पूर्ण सामानो पर मालिक का अधिकार है, उसी प्रकार मुझे भी मालिक अपनी मिल्कियत समझते हैं । मिल्कियत ही की भाँति वे मुझे अपनी इच्छानुसार अपने काम में लाते हैं । मैं चाहे दुःख दर्द से तड़पती रहूँ, पर संकेतो पर पुतली की भाँति नाचना मेरा काम है। मै कहीं आ नही सकती, कहीं जा नही सकती, और न कर सकती हूँ—स्वतंत्रतापूर्वक किसी से बातचीत । मै लुक छिपकर चाहे जो कुछ कर लूँ, पर उनके सामने कुछ भी नही कर सकती । तुम्हें पत्र लिखना भी उनकी दृष्टि मे अपराध है । पर तुम जानती हो कि मेरे हृदय में भयानक बवण्डर उठ रहे हैं । अतः अब मै साहसपूर्वक बाँध को तोड़ने लगी हूँ, आज्ञा का उल्लंघन करने लगी हूँ । फलस्वरूप जल उठी है घर में कलह की अग्नि । वे चाहते हैं, मै उनकी मिल्कियत बनकर रहूँ, और मैं चाहती हूँ, जगत में मनुष्य बनकर रहूँ । वे पर्वत की भाँति मेरा रास्ता रोके हुए हैं और मै उसमें छेद कर आगे निकलना चाहती हूँ, बहुत आगे ।

पर मै बन्दिनी के इस जीवन को भली प्रकार भोग चुकी हूँ सरला, भली प्रकार भोग चुकी हूँ। आज भी उसको भोग ही रही हूँ । हृदय मे उठ रहे हैं बवण्डर, पर साहस नहीं होता कि इस कड़ी को तोड़ दूँ । इच्छाये उठती हैं, फिर पस्त हो जाती हैं । अब तो वे मुझे कुलटा समझने लगे हैं और करने लगे हैं मेरे चरित्र पर सन्देह । इस सन्देह का एक मात्र आधार यही है कि अब मैं उनकी अनुचित आज्ञाओ का उल्लंघन करती हूँ और प्रगट करती हूँ अपनी स्वतंत्र प्रकृति को । अब मै घर में आने-जाने वाली स्त्रियो से मुँह खोलकर बातचीत करती हूँ, और स्वतंत्रता-पूर्वक अड़ोस-पड़ोस में भी जाया करती हूँ । वे भीतर ही भीतर कुढ़ते हैं,

क्रोध की आग से जलते हैं। यदि उनका वश चले तो वे एक ही दिन में मेरे जीवन का सर्वान्त कर दे, किन्तु वे जानते हैं कि सर्पिणी अब फूतकार छोड़ चुकी है, युद्ध के लिये फण काढ़ कर खड़ी हो उठी है। अतः वे भीतर ही भीतर कुढ कर रह जाते हैं। पर मै जानती हूँ उनके मन में सन्देह है, भयानक सन्देह। ज्यो ज्यो मै उनके मनके सन्देह को दूर करने का प्रयत्न करती हूँ, त्यो-त्यो वह और भी अधिक प्रबल होता जा रहा है, और भी अधिक जड़ पकडता जा रहा है। कभी-कभी मैं उनके सन्देह को देख कर कॉप उठती हूँ और सोचती हूँ कहीं कोई भयानक घटना न घटित हो जाय। नारी के प्रति पुरुष के मन का यह सन्देह ! बड़ा दुखद होता है, बड़ा भयानक होता है सरला। दासता की बेड़ियो में जकडी हुई न जाने कितनी नारियों को प्रति दिन इसका कुफल भोगना पड़ता है। न जाने कितनो का सिर फूटता है, न जाने कितनो की पीठ पर बेतो का प्रहार होता है, न जाने कितनी लात-घूसे सहती हैं और न जाने कितनो का धड़तक शरीर से काटकर अलग कर दिया जाता है। सन्देह की शराब में उन्मत्त पुरुष-शक्ति ! वह दयनीय नारी-जीवन के ऊपर बिल-कुल दानव सा बरसती है, बिलकुल दानव सा। अभी उस दिन का भयानक दृश्य ! उसे जब मै सोचती हूँ, तब मेरे अन्तर का कोना-कोना तक कॉप उठता है और निकल पड़ती है ऑखो से रोष की चिनगारियॉ। मेरे घर से कुछ ही दूर पर रहता था एक पठान अपनी बीवी के साथ। बीवी कमसिन थी, हसीन थी। मुसलमानो मे पर्दा यूँ भी अधिक होता है, पर वह पठान इस सम्बन्ध में अपनी मजहबी किताबो से भी आगे बढ़ा हुआ था। वह अपनी बीबी के शरीर में बाहर की हवा तक न लगने देता।

पुरुषों से कौन कहे, स्त्रियों से बात करने के लिये भी बेचारी तरसती थी। पठान एक कम्पनी में नौकर था। वह जब दस बजे काम पर जाता, तब घर में ताला लगा दिया करता था। बेचारी दिन भर घरमें कैदी की भाँति बन्द रहती। सन्ध्या समय पठान जब काम पर से लौटकर ताला खोल कर भीतर जाता, तब फिर उसकी सेवा मे लग जाती। यही था उस नारी के जीवन का व्यवसाय। एक दिन दोपहर का समय था। बूँदे पड़ रही थी। बादल घिरे थे, और चल रही थी ठण्डी-ठण्डी हवा। बेचारी घर के भीतर की गर्मी से ऊब कर खिड़की पर जा बैठी। संयोग की बात। कम्पनी के किसी काम से दूसरी ओर से पठान उधर आ निकला। उसने खिडकी पर नजर डाली, उसकी बीबी! वह क्रोधोन्मत्त हो उठा और साथ ही नाच उठी उसकी आँखो के सामने एक तस्वीर। उस तस्वीर में उसकी हसीन बीबी रोज खिड़की पर बैठी हुई दिखाई दी और उसके सामने उसे दिखाई पड़ा एक युवक। पठान इधर उधर देखने लगा। सचमुच कुछ दूर पर पतंग की डोरियो को आकाश मे ढीलता हुआ दिखाई पडा एक मुसलमान युवक। पठान का हृदय आशंका से काँप उठा। रग-रग मे क्रोध का तूफान, अन्तर के कोने-कोने मे पैशाचिक प्रवृत्ति। आँधी की भाँति घर की ओर मुड़ा। बेचारी अबला को अब भी यह ज्ञात न था कि उसके जीवन मे भयानक आँधी आनेवाली है। वह अब भी खिड़की पर बैठ कर ठण्डी ठण्डी बयार ले रही थी। पठान घर का ताला खोल कर धीरे से घर के भीतर घुसा और शीघ्र जा पहुँचा उस खिड़की के पास। उसने वहाँ से भी अपनी बीबी के सामने पतंग उड़ाते हुए उस मुसलिम जवान को देखा। फिर क्या? फिर तो उसके दानव से

हाथ उसकी चोटी पर जा पड़े। एक भयानक चीत्कार से घर गूँज उठा। अड़ोस-पड़ोस वाले दौड़े। लोगो ने द्वार पर जाकर देखा, रक्त से रँगा हुआ छुरा हाथ मे लेकर पठान भागा जा रहा है। लोगो में साहस न हुआ कि कोई उसकी ओर बढे। वह स्वयं दौडता हुआ कोतवाली मे जा पहुँचा। उसने बयान दिया, मै अपनी कुलटा स्त्री को दो टुकडे करके आ रहा हूँ। मुझे गिरफ्तार कीजिये। पठान गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस ने उसके घर जाकर देखा—सचमुच वह अबला दो खण्ड में पड़ी हुई अपने नारी-जीवन का प्रायश्चित्त कर रही थी।

यह है नारी का बन्दिनी रूप! न जाने कितनी बन्दिनियाँ इसी प्रकार अपने जीवन का तार तोडती हैं, अपने को अन्याय की आग मे झोकती हैं। पुरुष का मन अधिक से अधिक सन्देहशील होता है, अधिक से अधिक शंकालु। वह सोचता है, नारी वासना की प्रतिमा है और है कामना की डाल पर बैठकर पिहकने वाली कोयल। उसने देखा—जहाँ किसी नारी की आँखो के सामने किसी पुरुष को, फौरन उसके हृदय मे सन्देह की आग भडक उठती है और वह हो जाता है तैयार उसके उज्वल अञ्चल पर धब्बा लगाने के लिये। पर पुरुष ऐसा क्यो करता है सरला? जब पुरुष की भाँति नारी भी संसार मे मानव के रूप मे अवतरित हुई है, और जब उसी की भाँति उसके हृदय मे भी उमंगे, अभिलाषाये और आकाक्षाये हैं, तब वह नारी को क्यो बन्धन मे बाँध कर रखना चाहता है और समझता है क्यो उसे अपनी अनुचरी? संसार में नारी-जीवन का जो एक बहुत लम्बा इतिहास फैला हुआ है, उसे यदि तुम ध्यानपूर्वक पढ़ो तो तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर मिल जायगा सरला! तुम देखोगी कि नारी और

पुरुष का आपस में वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा पुरुष और उसकी सम्पत्ति का। पुरुष युग युगान्तर से नारी को अपनी मिलकियत समझता चला आ रहा है। जिस प्रकार लोग अपनी मिल्कियत की रक्षा करते हैं और बचाते हैं उसे चोर डाकुओ से, उसी प्रकार पुरुष भी नारी पर किसी दूसरे मनुष्य की ऑख नही लगने देना चाहते। उसे वे भली प्रकार सावधानी से घर मे बन्द करके रखते हैं। पहले तो वे उसे घर के बाहर निकालते ही नहीं, और जब कभी निकालते है तब उसे इस तरह कपडे से ढॅक कर रखते हैं कि हवा भी उसके शरीर को छू नहीं पाती! देखा है क्या तुमने किसी मुसलिम नारी को। वह बाहर निकलने पर किस प्रकार सिर से पैर तक ढॅकी रहती है। हिन्दू नारी का घूॅघट भी कुछ कम समा बॉधने वाला नहीं होता। मजाल क्या, ये दोनो नारियॉ अपने पर्दे को उठाकर संसार के किसी अलौकिक दृश्य को देख तो सकें! मालिक की मिल्कियत होने के कारण दोनो का संसार उसी डेढ़ हाथ मे सीमित रहता है। दोनो संसार से सुदूर उसी में बसती हैं और करती हैं अपने अभागे नारी-जीवन का प्रायश्चित्त।

मालिक की मिल्कियत होने के कारण कभी कभी नारियो का जीवन बड़ा ही संकटापन्न हो उठता है, बड़ा ही विपन्न! तुम जानती हो, सम्पत्ति पर चोर-डाकुओ का प्राय: आक्रमण हुआ करता है, और वे उसे लूटने खसोटने का अक्सर किया करते हैं प्रयत्न। ठीक सोने, चॉदी, रुपये, पैसे और गहनो की भॉति ही नारी पर लुटेरो का आक्रमण होता है, गुण्डो का प्रहार होता है। पर अपहृत सम्पत्ति और नारी के सम्बन्ध में मालिक के दृष्टिकोण मे बहुत अन्तर होता है सरला, बहुत अन्तर होता है। अपहृत सम्पत्ति के अनुसन्धान में मालिक ऍड़ी-चोटी का पसीना एक कर

देता है, पुलिस की सहायता लेता है और छानता है दर-दर की खाक, पर अपहृत नारी के लिये—उस नारी के लिये जो उसकी जीवन-संगिनी थी और जो जलाती थी नि:संकोच उसकी सेवा की आग मे अपने शरीर को—वह कुछ नही करता, कुछ नहीं करता। यदि अपने कर्त्तव्यवश पुलिस उसका पता लगाकर उसे खबर देती है, तब उसके ओठो पर होता है यह उत्तर—वह अब मेरे किस काम की। जब वह गुण्डो और लुटेरो के साथ रही, तब अब मै उसे कैसे ग्रहण कर सकता हूँ, कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? यहाँ नारी का जीवन बड़ा ही दयनीय हो उठता है, बड़ा ही विवश। गुण्डे उसपर अत्याचार करते हैं और उसका मालिक नारी को इसका उत्तर देता है घृणा और उपेक्षा के रूप में। बेचारी नारी वीभत्स जीवन बिताने के लिये तैयार हो उठती है—हिन्दू समाज की छाती पर न जाने कितनी ऐसी नारियाँ अपना बीभत्स जीवन बीता रही हैं। संसार मे यही एक ऐसा है समाज, जो अत्याचार-प्रपीड़िता नारी को सान्त्वना देता है घृणा और उपेक्षा के रूप में। सुनो एक घटना। यह घटना दैनिक विश्वमित्र मे प्रकाशित हुई थी। उसमें लिखा था—बंगाल के किसी ग्राम मे जाने के लिये एक दारोगा साहब अपनी स्त्री के साथ स्टेशन पर उतरे। उन्हे सामान इत्यादि उतारने मे प्लेटफार्म पर ही कुछ देर हो गई। अत: जबतक वे बाहर आवे, लारी पैसेंजरो को लेकर स्टेशन से चल पड़ी थी। वे बड़ी कठिनाई मे पड़े। हताश हो इधर-उधर देखने लगे। स्टेशन के समीप ही एक टैक्सी खड़ी थी, जिस पर ड्राइवर के अतिरिक्त दो मनुष्य और बैठे हुए थे। ड्राइवर ने दारोगा जी से पूछा—कहाँ जॉयगे आप?" दरोगा जी ने अपने गॉव का नाम बता दिया। ड्राइवर ने कहा—

"अच्छा हुआ, ये दोनो आदमी भी उसी तरफ जाने वाले हैं । चलिये आप भी ।" दारोगा जी तैयार हो गये, सस्त्रीक जा बैठे । किन्तु मोटर थोड़ी दूर आगे जाकर जिस ओर जाना चाहिये, उस ओर न जाकर दूसरी ओर घूम गई । दारोगा जी ने जब इस सम्बन्ध में पूछा, तब उन्हे उत्तर मिला, सड़क की मरम्मत हो रही है, इसलिये घूम कर जाना पडेगा ।' दारोगा जी को अविश्वास करने का कोई कारण नजर नहीं आया । वे शान्त बैठे रहे । मोटर दो मील आगे जाकर एक निर्जन स्थान मे रुकी । दारोगा जी कारण पूछ ही रहे थे, कि ड्राइवर और उसके दोनो साथी दारोगा जी पर टूट पड़े । वे इस आकस्मिक आक्रमण से अपनी रक्षा न कर सके । गुण्डो ने उनके हाथ पैर कसकर बाँध दिये और उनकी आँखो के सामने उनकी पत्नी का सतीत्व लूट कर मोटर द्वारा चम्पत हो गये । पत्नी फूट-फूट कर रोती रह गई, किन्तु दारोगा जी ने कर दिया उसका परित्याग । सोचो सरला ! क्या अपराध था. उस बेचारी नारी का । पुरुष जब नारी को अपनी बेड़ियो में जकड कर उसके नारीत्व को नष्ट कर देते हैं, तब वह कैसे करे अपने सतीत्व की रक्षा । गुण्डो और आततायियों से युद्ध करना तो दूर रहा, वह तो खड़कते हुए पत्ते तक से विकम्पित हो उठती हैं । वह जब कभी मुखतक नही खोलती, तब कैसे हाथ में छुरी लेकर खडी हो सकती हैं गुण्डो के सामने । पुरुष ने उसे अपनी मिल्कियत बनाकर कायर बना दिया हैं, अधिक भीरु । फिर क्यो न गुण्डे उसपर आक्रमण करें, क्यो न आततायी उसे अपना शिकार बनाये । कायर और भीरु व्यक्तियो का जीवन दुःखपूर्ण होता ही है जगत मे, पर इसके एकमात्र उत्तरदायी पुरुष हैं, पुरुष ।

पुरुष युग-युगान्तर से नारी को अपनी मिल्कियत समझते चले आ रहे हैं। चाहे तुम जिस देश में जाओ सरला, तुम्हे किसी न किसी रूप मे नारी पुरुष की मिल्कियत की शकल में अवश्य दिखाई पड़ेगी। हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई, सभी नारी को मिल्कियत ही के रूप मे देखते हैं। ईसाई देशो में स्त्रियो ने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारो के विरुद्ध एक जेहाद छेड़कर अपने दुखी जीवन का बहुत कुछ अन्त कर लिया है। नारी की जागरूकता के कारण युरोप, अमेरिका और जर्मनी इत्यादि देशो में नारी को बहुत कुछ अधिकार प्राप्त हैं। यही क्यो, इन देशो में तो नारी पुरुषो के समान ही अपना जीवन व्यतीत करती है। उसे अपने जीवन के हर-एक कार्य मे समाज की ओर से स्वाधीनता प्राप्त है। इन देशो मे नारी का सबसे अधिक सम्मान भी होता है। यदि तुम इन देशो मे किसी घर मे प्रवेश करो तो तुम्हे वहाँ नारी का एक दूसरा ही जीवन देखने को मिलेगा। तुम वहाँ देखोगी कि नारी एक मित्र की भाँति अपना काम कर रही है। अधिकार के नाम पर पुरुष का उस पर कुछ भी अधिकार नहीं। पुरुष स्वयं उसके प्रति अपना महान् उत्तरदायित्व समझता है। वह सब कुछ छोड़ देता है, पर अपनी स्त्री को नही छोड़ता। नारी के सामने उसके लिये बड़ा से बड़ा साम्राज्य भी तुच्छ है, हेय है। वह यथाशक्ति नारी के कष्टो को दूर करता है, उसे सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है। उसके हर-एक कार्य मे नारी उसके आगे रहती है, पर कहाँ है हिन्दू और मुसलिम समाज मे नारी की यह स्थिति? हिन्दुओ के घर मे तो नारी प्रमुख रूप से पुरुष की मिल्कियत होती है।

अत्याचारी से अत्याचारी पुरुष के पीछे-पीछे चलना नारी-जीवन का महान धर्म समझा जाता है। वेद को छोडकर हिन्दुओ के सभी धार्मिक ग्रन्थ अत्याचार-प्रपीड़िता नारी को सतीत्व का पाठ पढ़ाते हैं। पुराणो में इस प्रकार की बहुत सी कपोलकल्पित कहानियाँ भी दी गई हैं। इन कहानियो ही के द्वारा नारी के गले मे उतारा जाता है, आत्मदमन ! हिन्दुओ के पर्व और त्योहार भी नारी को आत्मदमन की शिक्षा देते हैं, पर वेदो में नारी की एक दूसरी ही स्थिति है, उसके जीवन का एक दूसरा ही स्वरूप है। वेदो में नारी के जीवन की जो स्थिति है वह कदाचित् संसार के किसी भी देश मे खोजने पर भी न मिलेगी। वेदो में नारी राष्ट्र की शक्ति है, लक्ष्मी है, और है समाज की सर्वोच्च पताका। वह जहाँ स्वाधीनता का जीवन व्यतीत करती है, वहाँ है उसके जीवन मे संयम, नम्रता और सहनशीलता। वेदो की नारी का जीवन एक आदर्श जीवन है, स्त्रीत्त्व का एक आदर्श प्रमाण है, किन्तु आज उसकी मर्यादा केवल वेदो के पन्नो ही तक सीमित है। जिस भारतवर्ष मे कभी नारी वेदो का वह आदर्श जीवन बिता रही थी, उसी मे कर रही है वह आज अत्याचार की पीडा से हाहाकार और चीत्कार ! जहाँ वह कभी राष्ट्र की जननी थी, समाज की सर्वोच्च पताका थी, उसी मे बनी हुई है वह आज पुरुषो की मिल्कियत, उनके संकेतो पर नाचनेवाली काठ की पुतली !

हिन्दुओ की भाँति मुसलमानो के घर में भी नारी का जीवन अधिक दयनीय है, अधिक विपन्न। नारी को मिल्कियत समझने मे मुसलमान हिन्दुओ से भी आगे बढ़े हुए हैं। हिन्दू तो विवाह होने के

पश्चात् नारी को अपनी मिल्कियत समझते हैं, पर मुसलमानो और यहूदियो का तो यह खयाल है कि नारी एक ऐसी मिल्कियत है, जो खुदा की ओर से पुरुषो को प्राप्त हुई है। मुसलमानो और यहूदियो के धार्मिक ग्रन्थो मे नारी के सम्बन्ध मे इसी प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं। यहूदियो की एक प्राचीन धर्म-पुस्तक में लिखा है—खुदा ने मिट्टी से गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि को बना दिया—उनमें रूह नहीं फूँकी। स्त्री को भी बनाया, लेकिन उसमे भी रूह नही फूँकी। आदम को बनाकर उसमें रूह फूँक दी।' यही कारण है कि यहूदी और मुसलमान नारी को बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं—इतनी उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं कि वे उसकी आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नही करते। मुसलमानो के धार्मिक ग्रन्थो के अनुसार नारी अधिक अपवित्र समझी जाती है और बताया जाता है उसका धर्म केवल घर मे बन्द रह कर पुरुषो की सेवा करना। इसीलिये मुसलमानो मे पर्दे की प्रथा अधिक है। संसार में कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो अपनी अन्यान्य सम्पत्ति की भाँति ही स्त्रियो को बेचती और उनका व्यापार करती हैं। वे जब आपस मे एक दूसरे पर आक्रमण करती हैं, तब हाथी घोड़ो की भाँति स्त्रियाँ भी लूटी जाती हैं।

जानती हो इसका कारण क्या है सरला? यही कि पुरुष नारी को अपनी मिल्कियत समझता है। क्या पुरुष की इस मनोभावना में कभी परिवर्तन हो सकेगा?

तुम्हारी सखी

मोहिनी

पिंजड़े की चिड़िया

बनारस

१०-४-४१

सखी !

तुमने मुझे निमंत्रित किया है, अपने कालेज के वार्षिकोत्सव मे सम्मिलित होने के लिये, पर क्या तुम जानती नहीं, कि मै कैसे सम्मिलित हो सकती हूँ ? कैसे वाह्य जगत के ऑगन मे पैर रखकर उसके कार्य्यों में भाग ले सकती हूँ ? चाहती तो मैं बहुत हूँ, कि तुम्हारे पास आऊँ, उत्सव में तुम्हारे समीप ही बैठकर फिर एक वार प्राचीन सुखो के झूले पर झूलूँ । याद हैं वे दिन सरला ! जब हम तुम दोनो साथ ही साथ स्कूल जाती थीं और घूमती थी, स्वतन्त्रतापूर्वक स्कूल की उस छोटी सी वाटिका में। कितना सुखमय जीवन था वह, कितना अपार हर्ष था उस जीवन मे । पर आज विवाहित नारी होने के कारण समाज की आज्ञा से मैने अपने उन समस्त सुखो को आग में झोक दिया है बहन ! सुख और हर्ष के नाम पर मेरे जीवन मे अब कोई वस्तु नही । अब तो मैं पिंजड़े मे बन्द रहनेवाली एक चिड़िया हूँ । चिड़िया भी ऐसी, जिसके पंख काट डाले गये हो, और जो खो बैठी हो अपने उड़ने की प्राकृतिक शक्ति को । दिन रात पिंजड़े का द्वार बन्द रहता है । पिंजडे में ही रहती हूँ, और पिजड़े मे ही अपने कटे हुये पंख को फड़फड़ाकर बैठ जाती हूँ। ठीक पिजड़े की चिड़िया ही की भाँति

मैं अपना जीवन भी बिता रही हूँ। डालो ज़रा मेरे जीवन पर दृष्टि ! मैं वही खाती हूँ, जो मेरा मालिक मुझे खाने को देता है। भूख की ज्वाला और प्यास की व्याकुलता को ठीक उस चिड़िये की ही भाँति अपनी ज़ुबान पर नहीं ला सकती। चिड़िया तो फड़फड़ा कर अपने अन्तर की आकुलता को प्रगट भी कर देती है, पर मेरा तो फड़फड़ाना भी पाप समझा जाता है, महापाप। मैंने पीड़ा से व्यथित होकर अपने पंखो को जरा हिलाया नहीं, कि लोग कह उठते हैं, कुलक्षिणी हैं, कुल संहारिणी हैं। ऐसा है, मेरा जब दयनीय जीवन, तब फिर मैं तुम्हारे कालेज के वार्षिकोत्सव में कैसे भाग ले सकती हूँ, कैसे उड़कर तुम्हारे पास आ सकती हूँ ? जब मेरे पंख ही काट डाले गये हैं, तब मै उड़ूँ कैसे ? आकाश मे चक्कर कैसे लगाऊँ ?

मेरे ही नहीं सरला, इसी प्रकार समस्त नारी जाति के पंख काट डाले गये हैं। यदि तुम नारियो के जीवन पर दृष्टिपात करो तो सभी तुम्हे पिंजड़े मे चिडिया की भाँति छटपटाती हुई दिखाई पड़ेगी। नारी जब तक अपने कौमार्य जीवन में रहती है, चाहे वह जितना संसार की ओर निहार ले, पर विवाह की जञ्जीर में बँधते ही उसका जीवन हो जाता है अधिक दयनीय। वह पिंजड़े मे डाल दी जाती है, और बन्द कर दिया जाता है, उसका द्वार। पिजडे का मालिक उसका पति जो कुछ कहता है, वही उसको करना होता है। उसको एक एक आज्ञा उसका धर्म है, उसकी एक एक इच्छा उसका कर्त्तव्य है। वह इच्छाओ और अभिलाषाओ से शून्य अपने पति की इच्छाओ पर फिरहिरी की भाँति नाचती है। वह उसे जो देता है, खाती है, जो देता है पहिनती है। वह जब तक खा नहीं लेता, भोजन नहीं करती, जब तक सो नही जाता, सोने का साहस नहीं करती। भूख की ज्वाला से अन्तर

छिला उठता हो, और फटी पड़ती हो आँखे नींद की पीड़ा से, पर फिर भी वह दो दो बजे रात तक बैठी रहती है, आँखे फाड-फाड़कर अपने पति का रास्ता देखती रहती है। उसके लिये पति का ऐसा ही आदेश है। पति कहता है, यदि तुम मेरी सेवा करके अपने धर्म के पथ पर आरूढ़ रहोगी, तो तुम्हे मोक्ष मिलेगा, और कहलावोगी जगत मे सती। पति नारी को डण्डे मार मार कर उससे इस महान् धर्म का पालन कराता है। एक नारी अपने इस धर्म से व्याकुल होकर लिखती है—मै ऊब चुकी हूँ, अपने इस जीवन से। वे मुझसे कहते हैं, कष्टो की आग मे जलो। तुम्हे मोक्ष मिलेगा, मोक्ष। मेरे वे कष्ट, मेरा वह विपन्न जीवन। मुझे आशा नही, मेरे इस जीवन का कभी अन्त होगा। कदाचित् उस समय जब प्राण पंक्षी इस घोसले से बाहर निकल जॉय, उसे छोड दे। वे दो दो बजे रात लौटकर आते हैं। मै भूखी-प्यासी उनका रास्ता देखती हूँ। कभी सो जाती हूँ तो क्रोध करते हैं, चरित्र पर लाछन लगाते हैं। चाहे दिन भर भूखो प्यासी बैठी रहूँ, पीड़ा की आग में जलती रहूँ, पर कभी यह भी नहीं पूछते, कि तुमने कुछ खाया है या नहीं। तुम्हारे गले के नीचे जल की एक घूँट भी उतरी या नही। इसकी उन्हे बिलकुल चिन्ता नही। उन्हे चिन्ता रहती है तो अपनी वासना की आग की। वे मेरे भूखे-प्यासे जीवन को भी अपनी वासना की आग मे डाल देते हैं। मै झुलस उठी हूँ, जीवन—शक्ति को खो चुकी हूँ। शरीर केवल हड्डियो का ढॉचा रह गया है। रोगो ने उसे भी जर्जर बना दिया है। काश, हड्डियों के इस ढॉचे को छोड़कर प्राण उड़ जाते!" न जाने कितनी नारियॉ इसी प्रकार पिजड़े मे पड़ी हुई तड़प रही हैं, आहो की गरम गरम साँसें छोड़ रही हैं।

आज से नही सरला, चिरकाल से पुरुष नारी को अपने पिंजड़े में बन्द करता चला आ रहा है। चाहे तुम संसार के जिस काल के इतिहास को उठाकर देख लो, तुम्हे नारी पुरुष के पिंजडे मे बन्द दिखाई पड़ेगी। सभ्य या असभ्य, संसार की सभी जातियो के पुरुषो की नारी के सम्बन्ध में सदा से यही धारणा रही है कि नारी पुरुष की दासी है। उसकी सृष्टि जगत मे इसीलिये हुई है कि वह पुरुषो की सेवाग्नि मे अपने सम्पूर्ण जीवन को जला डाले। पुरुष उसी धारणा के वशीभूत होकर नारी के साथ बिलकुल दासी का सा ही व्यवहार करता चला आ रहा है। आजकल युरोप, अमेरिका, जापान, जर्मनी और रूस इत्यादि देशो मे नारी की स्थिति बहुत कुछ उन्नत रूप मे है, किन्तु प्राचीन काल मे सारे संसार मे नारी पुरुष की चेरी समझी जाती थी। पुरुष चाहे जैसा नारी के साथ व्यवहार कर सकता था। वह जब चाहे तब उसके साथ विवाह कर सकता था, और जब चाहे तब कर सकता था, उसका परित्याग। एक-एक पुरुष सौ-सौ नारियो को अपने जीवन के साथ बाँधकर रख सकता था, पर एक नारी एक ही पुरुष के साथ अपने जीवन को बिता देती थी। किसी किसी देश मे कई पुरुषो के बीच मे एक नारी रहती थी और वह बारी बारी से हरएक की वासना की आग मे अपने शरीर का रक्त डाला करती थी। ऐसे देशो मे स्त्री की कोई स्थिति न होती थी। वह एक भ्रमित पशु की भाँति द्वार-द्वार भटकती रहती थी। किसी-किसी देश मे स्त्री सम्पत्ति की तरह बेंची ओर गिरो भी रक्खी जाती थी। पुरुष जब किसी विपत्ति मे फँसता था तब वह नारी को बेंच और गिरो रख करके ही अपना काम चलाता था। युद्धो में हारे हुए लोग हर्जाना

रूप में नारी को देकर के ही विजेताओं से अपना पिण्ड छुड़ाते थे। किसी-किसी देश में नारी जुए मे दॉव पर भी लगाई जाती थी। पुरुष जब जुए मे नारी को हार जाता था तब वह अपना घर-द्वार छोड़कर जीतने वाले के साथ चली जाती थी और उसकी इच्छानुसार अपना जीवन व्यतीत करती थी। संसार के बहुत से धार्मिक ग्रन्थो और महात्माओं के बचनो में भी नारी के दास्य-भाव की अधिक से अधिक प्रधानता है। हिन्दुओं के पुराण चिल्ला चिल्ला कर यह घोषणा करते हैं कि नारी पुरुष की दासी है, उसकी एकमात्र सम्पत्ति है। ईसाइयो की बाइबिल और मुसलमानो के कुरान मे भी इसी बात का समर्थन किया गया है। कुरान के अनुसार एक मुसलमान चार स्त्री से अपना विवाह कर सकता है। पारसी धर्म-ग्रन्थो में लिखा है कि स्त्री को प्रातःकाल उठकर अपने पति से यह पूछना चाहिये कि मैं क्या करूँ ? इसी प्रकार चीन का प्रसिद्ध महात्मा कन्फ्यशन कहता है--कि स्त्रियो को घर में रहना उचित है। स्त्रियॉ जब घर के बाहर निकलती हैं तब वे स्वयं अपवित्र होने के साथ ही साथ राष्ट्र और समाज को भी अपवित्र बना देती हैं।' जगत को कष्टो के जाल से छुड़ाने वाले बौद्ध सन्यासी भी स्त्रियो को हेय और तुच्छ ही समझते थे। स्त्रियो को बौद्ध-संघो में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं था। एक स्थान पर महात्मा बुद्ध ने लिखा है कि स्त्रियो को बौद्ध-संघो मे सम्मिलित करना अपनी इच्छा से चोरो को निमंत्रित करना है। स्त्रियॉ बौद्ध-संघो मे सम्मिलित होकर उसकी जड़ को हिला देगी, उसके अस्तित्व को कमजोर बना देगी।' युरोपीय महायुद्ध के पूर्व युरोप का पादरी समाज स्त्रियो की आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार न करता था!

ईसाइयो की धर्म पुस्तक बाइबिल के कथनानुसार स्त्रियो पर पुरुषो का शासन होना ही चाहिये। नारी जगत मे इसलिये उत्पन्न ही होती है कि वह पुरुषो के शासन के भार को सदा अपनी पीठ पर लादे रहे और होती रहे सदा उसके द्वारा शासित।

यह है संसार के धर्म-ग्रंथो और महापुरुषो का नारी के प्रति मनोभाव ! यही धर्म-ग्रंथ देते हैं, पुरुष को नारी को दासता की बेड़ियो में कसकर बॉधने का प्रोत्साहन। दूसरे शब्दो मे यह कहना चाहिये, कि नारी को दासता की बेड़ियो में कसकर बॉधने के लिये ही पुरुषों ने इन धर्म-ग्रंथो की सृष्टि की है। इन्ही धर्म-ग्रंथो को पुरुष नारी के सामने रखकर उसका मुख बन्द कर देते हैं, और उसे विवश कर देते हैं पिजड़े में रहने के लिये। दासता की इस बेड़ी को सुदृढ बनाने के लिये ही तो समाज में पर्दे की प्रथा की सृष्टि हुई है। पर्दा नारी की दासता की बेड़ी को दृढ करता है, और बनाता है उसे पुरुष की अनुगामिनी। पुरुष पर्दे ही के द्वारा नारी को अपने अधिकार मे रखता है। इसीलिये पुरुष नारी को उसके बाल्यकाल ही से उसे पर्दे का पाठ पढ़ाता है। प्राय. घरो मे छोटी-छोटी बालिकायें तक पर्दा करती हैं। पर्दे का तात्पर्य केवल मुँह को ढँक कर चलना ही नहीं है, बल्कि उसके अन्तर्गत पुरुष के वे सभी अत्याचार आ जाते हैं, जिनके द्वारा नारी के अधिकारों पर कुठाराघात होता है। छोटी-छोटी बालिकाओ के पर्दा करने का यह तात्पर्य नही है कि वे मुँह ढॅक कर चलती हैं। इसका तात्पर्य तो यह है, कि नारी को उसके बाल्यकाल में भी लड़को की भॉति स्वाधीनता नही मिलती। लड़के स्वाधीनतापूर्वक घूमते हैं, परिभ्रमण करते हैं, और करते हैं सैर सपाटे, पर लड़की के

बहुत ही सावधानी और संयम के साथ बाहर निकाला जाता है। वह लड़कों की भाँति मार्ग पर न स्वच्छन्द घूम सकती है, न व्यायाम कर सकती है, और न पाठालयों में शिक्षा प्राप्त कर सकती है। उसे उसी समय से बाह्य जगत से, शिक्षा से, चेतना से और स्वाधीन भावनाओं से दूर रहना सिखाया जाता है, बहुत दूर! पुरुष उसके मस्तिष्क और उसकी चेतना के प्रति अधिक सावधानी रखते हैं और अधिक सतर्कता। वह किसी भी परिस्थिति में, किसी भी वायुमण्डल में बहुत कुछ सोच-समझ कर उतारी जाती है। उतारी जाती है इसलिये कि पुरुष को उसे अपनी दासता की बेड़ियों में कसना होता है, और होता है बनाना अपनी अनुगामिनी। नारी को विवाह की जंजीर में बाँधने के पूर्व पुरुष अपने अन्तःकरण के इस भाव को बड़ी सावधानी और सतर्कता से अपने भीतर छिपाये रखता है, किन्तु जब वह नारी को विवाह की जंजीर में बाँध लेता है, तब वह स्पष्ट रूप से प्रगट कर देता है अपने इस मनोभाव को। उस समय नारी प्रगट रूप से उसकी दासी हो जाती है। मगर फिर भी पुरुष उसकी ओर से सावधान रहता है। उसे स्वाधीन प्रवृत्तियों से बचाने के लिये उससे जहाँ तक हो सकता है, वह उसे पर्दे में रखता है। इस भाँति पर्दे में रखता है कि एक नारी भी दूसरी नारी का मुख नहीं देख सकती। नव विवाहिता वधू को सदैव घर में मुँह ढँक करके ही रहना पड़ता है। सास, ससुर, देवर, जेठ, ननँद, हरएक के सामने उसका मुँह ढँका रहता है। दिन में वह अपने पति के सामने भी घूँघट काढ़ कर चलती है। बाहर तो वह कभी निकाली तक नहीं जाती। यदि निकाली भी जाती है तो उसके मुँह पर लटकता होता है डेढ़ हाथ का घूँघट। जगत के हरएक

दृश्य से, हरएक परिस्थिति से, हरएक मनुष्य से और हरएक जीवन से वह अपरिचित रक्खी जाती है, अधिक अपरिचित ! जगत की बात क्या, वह तो अपने मुहल्ले के मनुष्यो और पास के मार्गों तक से पूर्णतः अपरिचित होती है । पर्दे मे निरन्तर रहने के कारण उसकी मानसिक प्रवृत्तियाँ अधिक दब जाती हैं, और वह हो जाती है अधिक भीरु । उसका स्त्रीत्व लुप्त हो जाता है, और हो जाती हैं लुप्त उसके नारी जीवन की सारी शक्तियाँ । भीरु और शक्तियो से विहीन होने के कारण वह कभी-कभी भयानक विपत्तियो मे आग्रस्त हो जाती है । गुण्डे उसका अपहरण करते है, माया के चक्र मे निपुण नारियाँ उसे बहका ले जाती हैं और हो जाता है उसका जीवन अधिक विपन्न । पुरुषो के ऊपर निरन्तर आश्रित रहने के कारण वह संसार की परिस्थितियो से युद्ध नहीं कर सकती, युद्ध करके उन्हे अपने जीवन के अनुरूप नही बना सकती । उसपर जहाँ किसी विपत्ति का रंचमात्र आक्रमण हुआ नहीं कि वह पत्ते की भाँति काँप उठती है । इस प्रकार काँप उठती है कि भयभीत होकर अपने सतीत्व को भी खो देती है, और खो देती है अपने जीवन सत्त्व को । न जाने कितनी नारियाँ पर्दे के कुफल के कारण अपने जीवन के सत्व को खो रही हैं, दुःख और वेदना से हाहाकार कर रही हैं । एक नारी के दयनीय चित्र को देख कर पर्दे की भीषणता का अनुभव कीजिये और फिर यह सोचिये कि पर्दा किस प्रकार हमारे समाज का गला घोट रहा है, किस प्रकार उसे महापतन की ओर ले जा रहा है:—

वह नारी अपने एक पत्र मे लिखती है—मैं एक सम्भ्रान्त कुल की कन्या हूँ । गाँव मे पैदा हुई, गाँव मे पली, और गाँव मे ही मेरा विवाह भी

हुआ । कहने की आवश्यकता नहीं, कि गाँवो में पर्दे की प्रथा का कितना ज़ोर है । छोटी छोटी लड़कियाँ तक घूँघट काढ़ने मे प्राय: अधिक पटु होती हैं । बडी बहुओ का तो निरन्तर मुँह ढँका रहता है । बाहर की तो बात ही क्या, घर मे भी उन्हे सदैव घूँघट काढ़ कर चलना होता है । मै भी सदैव घूँघट काढ़े रहती थी । मुँह पर निरन्तर घूँघट का होना सती का लक्षण समझा जाता था । कही सतीत्त्व में आँच न लग जाय, कहीं कोई मुँह देखकर कुलटा की उपाधि न दे दे, यह भयानक भय सदैव पैरो को कस कर बाँधे रहता था, और निरन्तर रहता था ध्यान अपने घूँघट की ओर । सिर से घूँघट तनिक खिसका नहीं, कि हाथ फौरन ऊपर उठ जाते थे । सास, ससुर और पति की ऐसी ही आज्ञा थी । पति महाशय नवीन विचारो के व्यक्ति थे, शहर में रहते थे, काफी पढ़े-लिखे थे, पर मेरे लिये तो वे भी वैसे ही थे, जैसे गाँव का अक्षर-शून्य कोई मनुष्य । मैं जानती थी, कि वे शहर मे जाकर हर एक व्यक्ति से, हर एक मिलने योग्य नारी से स्वाधीनतापूर्वक मिलते थे, बात चीत करते थे, पर मेरे लिये उनका यही आदेश था, मै पर्दे मे रहूँ, मेरा मुँह कोई न देखे, और मै किसी से बात चीत न करूँ । कभी जब मै उत्सुकतावश अपने छोटे देवर से बात करने लगती, और वे उसे देख लेते, तब मुझपर बिगड़ उठते । डराते, धमकाते, और कभी कभी महीनो तक बात चीत करना भी छोड़ देते थे ।

विचित्र जीवन था वह मेरा ! मेरा ही नहीं, गाँव की सभी बहुयें इसी प्रकार का अपना जीवन बिताती हैं । गाँव ही की क्यो, शहरो मे भी इस प्रकार का जीवन बितानेवाली नारियो का अभाव नही है । मै शहर मे रहनेवाले अनेक ऐसे परिवारो को जानती हूँ, जिनमे पुरुष तो काफी शिक्षित

और काफी पढे लिखे हैं, पर स्त्रियो को देखो तो पर्दे के सिकंजे मे कसी हुई नदी का किनारा तक देखने के लिये मन ही मन तरसती रहती हैं। मेरा जिस गॉव मे विवाह हुआ था, उस गॉव की बहुत सी बहुओ को यह भी ज्ञात न था, कि इस गॉव के पास कौन सा स्टेशन है और है गॉव के किस ओर। मै स्टेशन का नाम तो जानती थी, किन्तु मुझे भी यह ज्ञात न था, कि वह है गॉव के किस ओर। मै मनही मन तरसती थी, कि एक दिन मै भी स्टेशन देख लेती, और गाड़ी पर चढ़कर कर लेती कुछ दूर तक यात्रा। मेरे पति बराबर गाड़ी से यात्रा किया करते थे। पर मै मन ही मन उसके लिये तरस रही थी। नारी और पुरुष के जीवन मे होता है कितना अन्तर! कहने के लिये नारी है मनुष्य, पर वास्तव मे पुरुष ने उसका जीवन बना दिया है उस पशु से भी हेय, जो वन मे स्वच्छन्दतापूर्वक विचरता है, अपने भीतर उठी हुई उमंगो की पूर्ति करता है। मेरी उमंगो और मेरी अभिलाषाओ की बागडोर थी, मेरे सास-ससुर और मेरे पति के हाथ मे। लाख मै किसी चीज़ के लिये तरसूॅ, लाख मै किसी चीज़ के लिये करूॅ अपने मनमे अभिलाषाये, पर जब तक सास, ससुर और पति की इच्छा न हो, वह कैसे पूरी हो सकती थी, और कैसे मिल सकता था मेरे तरसते हुये हृदय को सुख-सन्तोष!!

पर कदाचित् प्रकृति को खोलने थे मेरे जीवन के पृष्ठ। एक दिन सन्ध्या हो चुकी थी। अन्धकार धीरे धीरे बढ़ रहा था। मै अपनी सासजी के सामने बैठकर दीपक जलाने मे लगी थी। मेरे पति महाशय शहर से आ पहुॅचे, और चारपाई पर अपनी मॉ के पास बैठ गये। मै भागकर अन्धकारपूर्ण घर मे चली गई, और किवाड़ से लग कर सुनने लगी उनकी

बातो को। उन्होने इधर उधर की बाते करने के पश्चात् अपनी माँ से कहा, 'कल्ह सूर्य ग्रहण है। काशी गङ्गा नहाने चलोगी माँ!' माँ भला क्यो न चलती ? तुरन्त राजी हो गईं। सवा आठ बजे की गाड़ी से काशी जाने की बात पक्की हो गई। माँ—बेटे की काशी जाने की वात सुनकर मेरे हृदय में लहरे उठने लगीं और मै मन ही मन सोचने लगी, यदि मैं भी इनके साथ काशी चल सकती। मुझे आशा तो न थी, किन्तु मैने प्रयत्न के लिये पैर आगे बढ़ाया। रात के दस बज रहे थे। सासजी अपने कमरे में सो रही थी। मै रसोई के काम से छुट्टी पाने के पश्चात् धीरे-धीरे उनके पैरो को दाबने लगी। मेरा प्रति दिन रात में यही काम था। मै प्रति दिन रात में रसोई के कामो से छुट्टी पाने के पश्चात् एक घंटे तक उनके पैर दबाया करती थी। उस दिन डेढ़-दो घंटे तक मै उनके पैर दबाती रही। एक गहरी नीद सो जाने के पश्चात् जब उनकी आँखें खुलीं, तब उन्होंने कहा, अरे अभी तक तुम सोने नहीं गई! मै चुप रही। कुछ देर के पश्चात् मैने बड़ी ही विनम्रता से कहा, एक बात कहूँ माँ जी ? उन्होने कहा, कहो। मैने कहा, 'क्या मुझे भी अपने साथ काशी ले चलेंगी ? मैने आजतक काशी नही देखी है माँजी!' मेरी बात को सुनकर सास जी कुछ देरतक चुप रहीं। न जाने क्या मन ही मन सोचती रही। फिर उन्होंने कहा, अभी तुझे गङ्गा स्नान की इतनी चिन्ता क्या है बेटी ? अभी तो तेरा सारा जीवन पड़ा है और फिर तुझे किशोर जाने ही क्यों देगा ? कहीं ऐसा न हो कि तेरे पीछे मेरा जाना भी बन्द हो जाय।'

मेरी इच्छाओ के प्रति सास जी के हृदय मे सहानुभूति! मै आशा की शक्ति से कुछ प्रोत्साहित-सी हो उठी। मैने कहा, यदि

आपके रहते हुए काशी न देखूँगी, तो फिर कभी न देख सकूँगी माँ जी ! जब आप आज्ञा दे देगी तो फिर उनका साहस न होगा कि वे मुझे रोके, आपके साथ चलने से मना करे। अस्तु, ज्यो-त्यो मैने सासजी से काशी चलने की आज्ञा प्राप्त कर ली। सास जी की आज्ञा थी ही। सवेरे समय के पहले मै भी चलने के लिये तैयार हो गई। जब पति महाशय को यह बात मालूम हुई तब उन्हे अधिक आश्चर्य हुआ। यदि उनकी चलती तो मै काशी न जा सकती थी। काशी की बात क्या? वे तो मुझे कभी घरके बाहर भी निकालना नही चाहते थे, और इसके लिये दलील देते थे यह कि अपने जीवन की सबसे अधिक प्रिय वस्तु को क्या कभी कोई बाहर निकालता है? पर उस दिन थी सास जी की आज्ञा ! सास जी ने यह कहकर कि चलने दो हर्ज ही क्या है, उनका मुख बन्द कर दिया और मै जा पहुँची काशी। अपार भीड़ थी, चारो ओर से जन-समूह उमडा सा पड़ रहा था। गङ्गा के तट पर ऐसा जान पड़ता था, मानो मनुष्यो का स्व-पूर्ण कोई संसार सा बस गया हो। मैने उस संसार में घूँघट काढ़ कर बड़ी सावधानी से गङ्गाजी मे डुबकियाँ लगाई, और नहा धोकर चल पड़ी उस भीड़ में सासजी के पीछे-पीछे। मेरे मुख पर उस समय भी घूँघट था। पति महाशय की आँखें सदैव मेरे घूँघट की ओर लगी रहती थी। वे प्रायः यह देख लिया करते थे कि मै कहीं मुख खोल कर तो नहीं चल रही हूँ। घूँघट काढ़कर चलने में मुझे कोई आपत्ति न थी, किन्तु मै डर रही थी कि इस भीड-भाड़ में कही साथ न छूट जाय। इस लिये मैं कभी-कभी घूँघट उठाकर सास और पति को देख लिया करती थी। सास जी मेरा हाथ पकड़े हुई थीं, और मै बड़ी ही सावधानी के साथ उन्हें देखती

हुई आगे बढ़ी जा रही थी। सहसा भीड़ के उस अपार समुद्र में गर्जन करती हुई एक भयानक तरंग उठी। कदाचित् वह इसीलिये उठी थी कि मेरा हाथ सासजी के हाथ से छूट जाय। वह गर्जती हुई आई और उसने मुझे सासजी से बिलग करके बहुत दूर कर दिया। मैं घबड़ा उठी, रोने लगी और भरने लगी सिसकियाँ! उस समय भी मेरे मुख पर घूँघट था! उस समय भी मुझमें यह साहस न हुआ कि मैं घूँघट को उठाकर आई हुई आपत्ति का सामना करूँ! आखिर उसी घूँघट ने मुझे फँसा दिया माया के चक्र में और मै गिर पड़ी, महापतन के सागर में। मै कहाँ कहाँ-गई, किसके-किसके जाल में फँसी, वह एक बड़ी दुखद कहानी है। उस कहानी की इसी घूँघट ने सृष्टि की है, और इसीने मुझे विवश किया है, बिताने के लिये यह कुत्सित जीवन। अब भी जब मै कभी किसी नारी को घूँघट काढ़कर चलती हुई देखती हूँ, तब मेरा हृदय काँप उठता है, और मै यह सोचने लगती हूँ कहीं यह बेचारी जीवन के मार्ग पर भूल न जाय, भूलकर विपत्ति के सागर में न गिर जाय।'

यह है पर्दे के कारण समाज की छाती पर खिंचा हुआ नारी के जीवन का एक चित्र! ऐसे न जाने कितने चित्र समाज की छाती पर प्रति दिन चित्रित होते हैं। यदि कोई वेश्याओं के हाट में जाकर पता लगाये, यदि कोई कुत्सित जीवन बिताने वाली नारियो के जीवन को जाकर देखे तो न जाने कितनी अभागिनियों के कुत्सित जीवन की दीवाल केवल पर्दे की नींव पर खड़ी हुई दिखाई पड़ेगी। पुरुष देख रहे हैं, अपनी आँखो के सामने पर्दे से उत्पन्न होने वाली हानियो का चित्र, किन्तु फिर भी वे नारी को पर्दे से मुक्त करना नहीं चाहते। मुक्त करने को कौन कहे, वे तो कहते हैं पर्दे से बाहर निकलने

पर नारी स्वेच्छाचारिणी हो जायगी और हो जायगी कुत्सिता। मै पूछती हूँ, अधिक स्वेच्छाचार और अधिक कुत्सित जीवन कहाँ है? उन प्रान्तो में, जहाँ नारी पर्दे की प्रथा से मुक्त होकर स्वछन्द जीवन विता रही है या उन प्रान्तो में जहाँ पर्दे की वेड़ियो में जकड़ी हुई सिसकियाँ भर रही हैं। देख ले कोई इसी देश मे महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्त के स्त्रियो का जीवन! वे पर्दे की वेड़ियों से मुक्त होकर बाहर निर्भय विचरती हैं और करती हैं वीरता के साथ अपने चरित्र की रक्षा। साहस क्या किसी पुरुष में कि वह उनकी ओर आँख उठाकर देख ले। युरोपीय स्त्रियाँ तो इन भारतीय स्त्रियो से भी बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। पर्दे में न रहने के कारण उनकी मानसिक शक्ति निरन्तर विकसित होती रहती है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकृति और आकाश से मिलने वाले तत्त्वो से लाभ उठाती हैं और होता है उनके शरीर तथा जीवन का सुन्दर गठन। वे अपने समाज की रचना में भाग लेती हैं, राष्ट्र को बनाती हैं और देती हैं उसे शक्ति का दान। राष्ट्र और समाज जब आपदा के सिकंजो में फँसता है, तब वे शक्ति की महादेवी की भाँति उसकी रगों में जीवन का संचार करती हैं और दौड़ाती हैं साहस का नवीन रक्त। आज जब जर्मनी ने ब्रिटेन पर आक्रमण किया है, बृटेन की स्त्रियाँ क्या नहीं कर रही हैं? सभी कुछ तो। वे युद्धो में पुरुष-सिपाहियों की भाँति भाग ले रही हैं, हवाई जहाजो का संचालन कर रही है और फेक रही हैं उन्ही पर बैठकर शत्रुओ की छाती पर बम के गोले। जानती हो सरला, युरोपीय स्त्रियो की इस निर्भयता का कारण क्या है? उनके समाज ने उन्हें मुक्त कर दिया है। वे हर एक प्रकार से स्वाधीन है, अपने मानवी-अधिकारों से संयुक्त हैं। एक दिन हमारे देश में भी ऐसा ही था नारियों का

जीवन । पर उस समय नारी घूँघट काढ़कर नहीं चलती थी। दासता की बेड़ियो में जकड़ी हुई न थी । उस समय थी वह समाज और राष्ट्र की अभिनेत्री । वह सिंहिनी की भाँति गरजती थी, तीर और भाले लेकर रणस्थल की सैर करती थी और भोंकती थी चरित्र पर आक्रमण करने वाले आततायियो की कमर में छुरे । पर आज तो जहाँ युरोपीय स्त्रियाँ वायु-यानो में बैठकर बम के गोले फेंक रही हैं, वहाँ पर्दे मे जकड़ी हुई भारतीय नारियाँ अपने जीवन पर आँसू बहा रही हैं । समाज और राष्ट्र की तो बात ही क्या, वे बेचारियाँ अपने सतीत्त्व की भी रक्षा नही कर सकतीं, अपने नारीत्त्व को भी बचाकर अपने पास नही रख सकतीं । उनके सतीत्त्व पर कलंक की कालिमा पुत जाती है, उनका नारीत्त्व लूट लिया जाता है, पर वे आँसू बहाती हुई चुप रहती हैं, मौन !

कितना दयनीय जीवन है पर्दे की बेड़ियो में जकड़ी हुई नारियो का । क्या पुरुषो की आँखे इस ओर जायँगी ?

तुम्हारी बहन
मोहिनी ।

अनबोलती दुलहिन

बनारस

१२—४—४१

मेरी बहन !

समाज मे स्त्रियो की अनेक समस्याऍ हैं, उनके जीवन की अनेक उलझने हैं। मै स्वयं समस्याओ और उलझनो का एक चित्र हूॅ। ये समस्याऍ और ये उलझने नारी के लिये अधिक जटिल हैं, अधिक दुखद। नारी इन्हीं समस्याओ के सिकंजे में फॅसी हुई चीत्कार कर रही है, अपने करुण क्रन्दनो से जगत को कॅपा रही है। चाहे तुम जिस ओर दृष्टि पसार कर देखो, चाहे तुम जिस समाज और राष्ट्र की ओर झॉको, नारी तुम्हें किसी न किसी रूप में अत्याचार से कॉपती हुई दिखाई अवश्य पड़ेगी। युरोपीय समाज जो आज सबसे अधिक सभ्य होने के लिये संसार के सामने अपना ताल ठोक रहा है, वह भी किसी न किसी रूप मे नारी का गर्दन मरोड़ता है, उसे अपने अत्याचार की आग मे झोकता है। युरोपीय समाज के हाथो से नारी की गर्दन मरोडे जाने की बात सुनकर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा सरला, अधिक आश्चर्य !! पर मैं जो कहती हूॅ, सच कहती हूॅ। हमारा समाज जहॉ नारी के जीवन को आग में डालकर उसे बड़ी निर्दयता से भूॅजता है, वहॉ युरोपीय समाज भी धीरे धीरे उसका गला मरोड़ने का काम करता है। यदि तुम्हें विश्वास न होता हो सरला, तो देख लो युरोपीय समाज की ओर।

हमारे समाज की भाँति युरोपीय समाज की भी छाती पर वेश्याएँ लदी हैं और लदी हैं करोड़ो की संख्या में। जर्मनी, फ्रान्स, इंगलैण्ड और अमेरिका इत्यादि पश्चिमी देशो के हाट, हाट मे, गली गली में वेश्याएँ भरी पड़ी हैं, अपने पाप-पूर्ण जीवन के धुएँ से उस उन्नत और गर्वी समाज के मुख में कालिख पोत रही हैं। मै क्या उस गर्वी समाज से यह पूँछ सकती हूँ सरला कि ये वेश्याएँ कौन हैं? कहाँ से आईं? उनका जब नारी के रूप में जगत मे जन्म हुआ है, तब वे क्यो बिता रही हैं इस प्रकार का कुत्सित जीवन? क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि वे अपनी इच्छा से इस पाप को अपने जीवन से लपेटे हुई हैं, उससे स्वच्छन्दतापूर्वक खेल कर रही हैं। यदि सचमुच उन नारियो ने अपने पाप-पूर्ण जीवन की दीवाल केवल वासना की नीव पर खड़ी की है, तब तो मै यह और भी कहूँगी कि उनका समाज अधिक गन्दा है, अधिक वीभत्स है और है अधिक खोखला। पर विश्वास नही होता सरला कि मैं यह मान लूँ कि उनके इस पापाभिनय मे उनकी केवल अभिलाषा मात्र है। हो सकता है दो चार नारियाँ पाप के इस घिनौने जीवन को पसन्द करती हो, पर ऐसी नारियो का कोई समाज नही बन सकता, वे लाखो और करोड़ो की संख्या मे समाज की छाती पर बैठ कर उसका दम नहीं तोड़ सकतीं। यह भी पुरुष का नारी के ऊपर अधिक अत्याचार है, अधिक अत्याचार। वह अपने अत्याचारो को छिपाने के लिये ही नारी के चरित्र पर चोट करता है और उसके अन्तःकरण को प्रकृत रूप से कलुषित बताकर उसके अस्तित्त्व तक को कँपा देता है, उसे किसी से सहानुभूति न मिलने वाली भिखारिणी बना देता है। वास्तव में बात तो यह है सरला कि वेश्याएँ नारियो पर होने वाले समाज के अत्या-

चारो की प्रतीक हैं। जिस किसी भी देश और समाज में वेश्याएँ हैं, वही हैं नारी-जीवन की समस्याएँ, वहीं हैं उसके जीवन की जटिल उलझनें। कोई कहे या न कहे, पर समाज की छाती पर बैठी हुई वेश्यायें चिल्ला चिल्लाकर समाज द्वारा नारी पर होने वाले अत्याचार की घोषणा करती हैं। युरोपीय देशों की वेश्यायें भी कर रही हैं यही घोषणा और इस घोषणा के द्वारा वे उसके सभ्यताभिमान को धूल में मिला रही हैं, तिनका कर रही हैं।

हमारा समाज तो नारी की समस्यायो और उसके जीवन की जटिल उलझनो का एक पुज सा है। नारी के जीवन की जितनी समस्याएँ हमारे समाज में हैं, उतनी कदाचित् संसार के किसी भी समाज में नहीं, किसी भी देश में नहीं। यदि तुम पृथ्वी की परिक्रमा करो सरला, तो तुम्हें भारत की जैसी वन्दिनी नारी पृथ्वी की छाती पर कहीं नहीं दिखाई पड़ेगी। भारत की नारी के जीवन से तो उन हब्शी स्त्रियो का जीवन अच्छा है, जो अफ्रिका के वनो में रहने वाले अपने जंगली पतियो के साथ अपना जीवन व्यतीत करती हैं। हमारे समाज में तो नारी समस्याओ के एक सघन जाल में जकड़ी हुई है और यही कारण है कि हमारा समाज संसार में सबसे अधिक नीचे गिर गया है। डालो जरा महापतन के सागर में डुबकियाँ लगाने वाले इस अभागे समाज पर दृष्टि ! उसकी छाती पर असंख्य वेश्यायें बैठी हुई अपने जीवन को काला कर रही हैं। दिन प्रति दिन वेश्याओ की संख्या बढ़ती जा रही है। उनके जीवन से निकला हुआ पाप पूर्ण धुआँ सघन होता जा रहा है। इन वेश्याओ के अतिरिक्त समाज के भीतर और भी न जाने कितनी ऐसी नारियाँ हैं जो उसके अत्याचार से आकुल होकर उसके हृदय में छुरी भोंकने

का काम करती हैं। कितना अच्छा प्रकाश डाला था गुजराती के एक लेखक ने पाप-पूर्ण जीवन बिताने वाली इन नारियो के ऊपर। उसने एक समाचार पत्र मे उनके जीवन के प्रति अपने अन्तर की व्यथा प्रकट करते हुए लिखा था—'जब मै बाजारो में कोठे पर बैठकर अपने नारीत्व को बेचती हुई वेश्याओ को देखता हूँ, तब मेरी अन्तरात्मा से अनायासही यह प्रतिध्वनि सी निकल पड़ती है कि ये दुःख-दर्द की ऐसी तसवीरें हे, जिनपर समाज के अत्याचारो ने रंग फेरा है।,' 'सचमुच सरला, समाज की छातीपर लदी हुई वेश्यायें उसके अत्याचार की प्रतीक हे। उन वेश्याओ को देखते ही दौड़ पड़ता है ऑखो के सामने समाज के अत्याचारो का चित्र। समाज नारियो पर होनेवाले अपने अत्याचारो को छिपाने का प्रयत्न करता है, किन्तु समाज के अत्याचारो से प्रपीड़ित नारियॉ जब वेश्या के रूप में सामने आती हैं, तब वे समाज के अत्याचारो को प्रकट करने के साथ ही साथ उसके हृदय को भी फाड़कर रख देती हैं संसार के सामने।

मैंने तुम्हे बताया है सरला, कि हमारे समाज मे नारी-जीवन की अनेक समस्याएँ हैं। मै जब अपनी वेदना की तसवीरो के रूप में प्रत्येक समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रही हूँ, तब उस समस्या को क्यो छोड़ूँ, जिसकी ग्रन्थि में फॅसी हुई आज अनेक बहने पीड़ा से छटपटा रही हैं। उस समस्या को हम तुम सब जानती है बहन, और जानती हें अच्छी तरह। वह आज नारी-जीवन की एक बड़ी जटिल समस्या है और है बड़ी भयानक। समाज की ओर ऑख उठाकर देखो! उसकी सम्पूर्ण गोद विधवाओ और वेश्याओ के चीत्कार से गुंजित हो रही है। भ्रूणहत्या का धुऑ चारो ओर से उठ रहा है और उठकर सघन होता

जा रहा है। नवजात बच्चों के रक्त के तरारो से पृथ्वी का अन्तःकरण तक कम्पित हो उठा है। पर क्या तुमने कभी सोचा है सरला, क्या है इसका कारण? इसका कारण जानने के लिये तुम्हें विवाह के मण्डपों में जाना पड़ेगा। तुम उन मण्डपो मे जाकर देखोगी—एक बूढ़े के साथ एक अबोध बालिका का विवाह और देखोगी, दो अबोध बचो का विवाह के नाम पर पारस्परिक मिलन! यही बाल-विवाह है इस उठते हुए धुँए का कारण सरला! आज तुम समाज की छाती पर बैठी हुई जिन विधवाओ और वेश्याओ को देख रही हो, वे हैं हमारी यही अनबोलती दुलहिने। समाज ने विवाह के नाम पर इनके जीवन के साथ अत्याचार किया था, इन्हे अन्याय की आग में झोका था। समाज के अत्याचार और अन्याय के प्रतिफल स्वरूप अब वे असहाय रूप में समाज की छाती पर बैठकर चीत्कार कर रही हैं, अपने जीवन की दर्दभरी तसवीरो को दिखा-दिखाकर उसके अत्याचारो को प्रकट कर रही हैं।

हमारी वे अनबोलती दुलहिनें और उनका वेदनापूर्ण वह जीवन! हृदय कॉप उठता है, मानवता चीत्कार करने लगती है। बेचारियो ने कभी मॉग में सिंदूर तक न डाला, हाथ मे सुहाग की चूड़ियॉ तक न पहनी और पुछ गया 'उनके मॉग का सिंदूर और टूट गई उनके हाथ की चूड़ियॉ। उन्होने जाना ही नहीं, जीवन में विवाह के दिन कब आये और कब गये। उन्होने देखा ही नहीं अपने जीवन के उस सहचर को, जिसके जीवन-ग्रन्थि में उसकी जीवन-ग्रन्थि बॉध दी गई थी। समाज ने दे दिया था अबोधावस्था में उसके हाथ को किसी बूढ़े या बालक के हाथ में। बूढ़ा चल बसा, बालक ने अपना दम तोड़ दिया

और हो गई अब वह विधवा। विधवा होने के साथ ही उनकी सारी उमंगे भस्म हो गई, जीवन अन्धकार के पर्दे से ढँक गया। उनके लिये अब समाज के ऑगन मे वेदना, दुःख और पीडा के अतिरिक्त कुछ नही। वे घर-घर से उपेक्षित है, व्यक्ति-व्यक्ति के द्वारा लाछित हैं। उन्हें गहने पहनने का अधिकार नही हैं और न अधिकार है अच्छे कपडे पहनने का। वे सुस्वादु भोजन भी नहीं खा सकतीं। घर मुहल्लो में विवाह-उत्सवो की धूम हो, पर वे उनमें सम्मिलित नहीं हो सकतीं, उनमें सम्मिलित होकर उन्हें अपवित्र नहीं बना सकती। उनकी छायातक अपवित्र समझी जाती है, नापाक। मॉ-बाप, भाई-बहन सभी की नजरो से वे गिरी हुई हैं और गिरी हुई हैं बहुत नीचे। सब उन्हें विधवा कहते हैं और विधवा होने ही के कारण उन्हें समझते है अधिक निन्दनीय। पर सरला, उन बेचारियो ने किसी के साथ अपना विवाह किया ही कब था? उन्होंने कब दिया था किसी के हाथ में अपने हाथ को? कब प्रतिज्ञा की थी वैदिक मंत्रो-द्वारा किसी के जीवन-ग्रंथि में बॅधने की? और यदि प्रतिज्ञा भी की थी, तो क्या वे एक साथी के खो जाने के पश्चात् अपने लिये दूसरा जीवन का साथी नहीं खोज सकती। पुरुष जब एक नारी के रहते हुए चार-चार पॉच-पाँच नारियो को अपने जीवन से लपेट सकता है, तब एक नारी, ऐसी नारी जिसके जीवन के साथ विवाह का अभिनय किया गया था, एक जीवन-सहचर के बाद क्यो नही अपने लिये दूसरे जीवन-सहचर की खोज कर सकती, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकती सरला! यह सच है कि समाज ने उसे विवाह की वेदिका पर सुलाकर उसके गले पर छुरी चलाई है, पर वह उसे इस बात की आज्ञा नहीं दे सकता कि वह अपने

लिये दूसरे जीवन-सहचर की खोज करे। समाज को यह स्वीकार है कि वह अपनी समस्त उमंगों को आह की चिता पर जला दे, वेश्या बनकर पाप के काले धुएँ के रूप में चारों ओर से उसे ढँक ले, नवजात बच्चों की गरदनें मोड़कर पृथ्वी को चीत्कार से कँपा दे, पर समाज और समाज के संरक्षकों को यह स्वीकार नहीं कि वे निरीह बच्चियाँ सयानी होने पर अपने जीवन को विवाह के सुख से सुखी करे। वह तो उन्हे अन्याय की जलती हुई आग मे तड़पा-तड़पा कर मार डालना चाहता है। उसकी कानूनी पुस्तको में ऐसी निरीह बच्चियों के लिये ऐसी ही व्यवस्था है, ऐसा ही आदेश है। पर कौन कह सकता है इसे व्यवस्था और कौन कह सकता है इसे कानून। व्यवस्था और कानून के नाम पर यह तो पैशाचिकता है, दानवता का अट्टहास है।

बाल और वृद्ध-विवाह की वेदिका पर प्रतिवर्ष करोड़ों निरीह बच्चियो का बलिदान। दिशाएँ उनके करुण क्रन्दन से कम्पित हो उठी हैं और करने लगी है पृथ्वी उन्हीं की भाँति चीत्कार ! ज्यो ज्यों इन निरीह बच्चियों की संख्या बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यो बढ़ती जा रही हैं भ्रूण हत्यायें और बढ़ता जा रहा है नवजात शिशुओ का संहार। किसके सिरपर है इसका उत्तर-दायित्व? किसके मस्तक पर लग रहा है कलंक का यह टीका? समाज और समाज के नामधारी पुरुषों के ऊपर इसका उत्तरदायित्व है और लग रहा है उन्हीं के भाल पर कलंक का यह टीका। समाज के नाम धारी पुरुष जब विवाह के नाम पर निरीह बच्चियो के जीवन के साथ बलात्कार करेंगे, तब वे युवती होने पर करेंगी ही भ्रूण हत्यायें और मरोड़ेंगी ही नवजात बच्चों की गर्दनें। जब एक विधुर बालक अपनी उमंगों और अपनी

अभिलाषाओ को आह की चिता में भस्म नही कर सकता, तब कैसे उसे भस्म कर सकती है एक विधवा बालिका। बालक की भाँति ही उसके जीवन मे भी तो बसन्त का उभार आता है और करता है यौवन का उन्माद उसे आकुल। फिर वह क्यो न अपनी उमंगो और अपनी अभिलाषाओ की पूर्ति करे, क्यो न वह वासना की आग मे कूद कर समाज की छाती मे पाप की छुरी भोंके! होगा समाज और समाज के नामधारी पुरुषो की दृष्टि मे उसका यह काम महापाप! समाज के नामधारी पुरुष ज़रा छाती पर हाथ रख कर सोचे तो!—पापी कौन है, खूनी कौन है और कौन है पाप के धुएँ से सृष्टि को कलंकित करनेवाला?—वे अनबोलती दुलहिने, जिनके जीवन के साथ विवाह के नाम पर बलात्कार किया जाता है, या वे नामधारी पुरुष जो बाल और वृद्ध विवाह की भयानक अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें झोक देते हैं अपनी इच्छा से निरीह बच्चियो को। ऐसे पुरुषो को देखिये, एक विद्वान लेखक ने कैसे शब्दो मे याद किया है—'देश में गायो की रक्षा के लिये गोशालायें खुली हैं, पशुओ की रक्षा के लिये पशुशालाये खुली हैं। छोटी छोटी कीड़ियो और ईलियो की रक्षा के लिये हज़ारो रुपया व्यय किया जाता है। कोई नगर ऐसा नही जिसमे कबूतरों को दाने डालने के लिये हज़ारो मन अनाज न गिरता हो। जानवरो के प्रति निर्दयता का व्यवहार रोकने के लिये विशेष कानूनो की सृष्टि हुई है। सैकड़ो गधे वाले, घोडे वाले, और अन्य नाना प्रकार के जानवर रखने वालो का 'बेरहमी' मे चालान इन्हीं कानूनो के अनुसार नित्य-प्रति होता है और हर नगर में अपराधियो को दण्ड देने के लिये अलग मजिस्ट्रेट भी रहता है। जंगली जानवर और पशुओ की रक्षा के लिये भी कानून बने हुए हैं। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की

अदालत से पहले ही शिकारियो को आदेश मिल जाता है कि अमुक मौसम में शिकार खेलने मत जाओ, अमुक स्थानो पर शिकार मत खेलो और अमुक जानवरो को मत मारो। भारतवर्ष के दया-भावकी तो कुछ न पूछिये। आना सागर, पुष्कर, गंगा, जमुना के किनारे, तालाबो और नदियो पर हजारों आदमी मछलियो और कछुओ को हज़ारो मन आटा और दाना खिलाते हैं। हज़ारो आदमी सायं और प्रातःकाल 'कीड़ी नगरा' सींचते हैं। कुत्तो और चूहो को मारने और मरवाने पर म्युनिस्पल कमेटी वालो में बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं, अर्जियाँ दी जाती हैं, और डेप्यूटेशन मिलने जाते हैं। मछली भी सार्वजनिक स्थानो मे नहीं पकड़ी जाती। हरे वृक्ष की डाल काटने पर लड़ाइयाँ हो जाती हैं। गोहत्या के कारण ईद इत्यादि त्योहारो पर बलवे होते ही रहते हैं, पर दुःख है कि इतने दया-भाव रखने वाले मनुष्य के हृदय में बाल और वृद्ध विवाह के द्वारा निरीह बच्चियो का खून करने वाले पुरुषो के प्रति रंचमात्र भी क्षोभ नही। वे मुक्त हस्त होकर प्रति वर्ष करोड़ो निरीह बच्चियो का गला काट रहे हैं, पर उनके लिये दण्ड की कोई व्यवस्था नही, कोई कानून नहीं!"

सचमुच सरला, बाल और वृद्ध विवाह की वेदिका पर निरीह बच्चियो का गला मरोड़ने वाले पुरुषो के लिये कोई दण्ड नहीं, कोई कानून नहीं। और ऐसी अवस्था मे कोई दण्ड नहीं, जब उनके अपराध को देखकर खूनी भी रो उठता है, आततायी भी कपड़े मे अपना मुँह छिपा लेता है और निकल पड़ता है डाकू के मुख से भी हाय हाय! दण्ड और कानून न होने से ही तो उनके हाथ चलते जा रहे हैं और वे मरोड़ते जा रहे हैं निरीह बच्चियों की गर्दनें। निरीह बच्चियो का वह चीत्कार, अनबोलती दुलहिनो

का वह करुण-क्रन्दन !! सुन लो सरला, सुन लो, विधवाओ और वेश्याओ के स्वर में सुन लो ! उनके जीवन की एक एक कहानी वेदना का सागर बहाती है और उठाती है हृदय में भयानक दुःख का ज्वार । सुनोगी उनके जीवन की कहानी सरला ! उन्हीं में से एक ने अपने जीवन की कहानी इन शब्दो में व्यक्त की है:—

"संसार कहता है, मेरा हो चुका है विवाह और मै खो चुकी हूँ अपने भाल के सिन्दूर को, पर मै तो यह जानती ही नहीं कि मेरा कब हुआ विवाह और मैने कब खोया अपने जीवन का सहचर ! मुझे याद है उस दिन की सन्ध्या जब मेरा छोटा भाई तार लेकर दौड़ा हुआ आया था और उसमें लिखे हुए समाचार को सुनकर माता जी हाय-हाय करके रोने लगी थीं और बैठ गये थे पिता जी अपने कपाल पर हाथ धर कर । उसी दिन, उसी सन्ध्या में मैने साथ ही साथ दो खबरे सुनी—मेरा विवाह हुआ था और मैं विधवा हो गई । इसके पूर्व मैं त्योहारों पर चूड़ियाँ पहिनती थी, रंग-विरंगी साडियो से शरीर को सजाती थी, पैरो में महावर लगाती थी और डालती थी भाल मे सिन्दूर, पर उस दिन से मेरा सब कुछ छीन लिया गया । तार आने के साथ ही मेरे हाथ की चूडियाँ फोड़ डाली गईं और पोछ डाला गया, मेरे भाल का सिन्दूर । उस दिन तो मैं कुछ न समझ सकी इसका तात्पर्य, किन्तु ज्यों-ज्यो मैंने यौवन की ओर आगे पैर बढ़ाया, आने लगा मेरी समझ में लोगों की उपेक्षा का अर्थ । मैं यह जानने लगी कि विधवा का क्या तात्पर्य है ? उसका जीवन क्यो सूना, हेय और तुच्छ

समझा जाता है ? पर मेरी समझ मे नहीं आता कि मै विधवा कैसे हुई ? जब मैंने विवाह की वेदी पर बैठकर किसीको अपना जीवन-सहचर बनाया ही नही, तब मेरे जीवन-सहचर के मर जाने की बात कैसी ? पर समाज मुझे विधवा कहता है, अतः इस मर्म को न जानते हुए भी मै अपने को विधवा समझती हूँ और समाज की आज्ञानुसार विधवाओ की ही भाँति अपना जीवन भी बिताने का प्रयत्न करती हूँ।

पर प्रकृति के ऊपर समाज की आज्ञाओ का प्रभाव नहीं। समाज ने मुझे तो बड़ी सरलता के साथ अपने आदेश की जंजीरो में कसकर बाँध लिया, पर प्रकृति स्वतंत्र रूप से मेरे शरीर के साथ अपना खेल करती ही जा रही है। मेरे भी शरीर में औरो की भाँति यौवन फूट रहा है और उठ रही हैं उसके साथ ही हृदय में उमंगे। समाज का आदेश है, उमंगो को दबा दो, इच्छाओ को आहों की चिता पर सुलाकर जला दो और मन को मार-मार कर बना दो खाक, पर प्रकृति, उसके सामने मेरा कुछ वश चलता ही नहीं। ज्यो-ज्यो उमंगे उठ रही हैं, अभिलाषाएँ जोर मार रही हैं, मै नीचे फिसलती जा रही हूँ और फिसलते-फिसलते यहाँतक पहुँच गई हूँ कि उदर में एक भ्रूण ने जन्म ले लिया है। मै आकुल हूँ, अधिक परीशान! किससे कहूँ अपनी इस व्यथा को, किसे सुनाऊँ अपने दर्द की कहानी। समाज की ओर देखती हूँ तो हृदय आशंका से काँप उठता है, अन्तर के कोने-कोने मे गहरी पीड़ा दौड़ पड़ती है। उस युवक की, जिसके साथ मैने महापतन के समुद्र में डुबकियाँ लगाई, सम्मति है—भ्रूण को गिरा दो। तो क्या मैं सचमुच भ्रूण को गिरा दूँ ?'

कौन उत्तर दे, इस बहन की इस बात का। न जाने कितनी अभागिन बहने इसी प्रकार आँसू बहा-बहाकर उत्तर माँग रही हैं—मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, और किससे कहूँ अपने अन्तर की व्यथा ? करुणा से लदी हुई उनके अन्तर की उसाँसे साधन और सम्बल की खोज में रह-रहकर निकलती हैं, पर समाज की वज्र ऐसी दीवालो से टकरा कर गिर गिर पड़ती हैं, पीड़ा से बेहोश हो जाती हैं। वे विवश होकर समाज को छोड़ती चली जा रही हैं, वेश्याओ के कूँचे में अपना सिर घुसेड़ती जा रही हैं। जब उन्हें कोई आश्रय नहीं देता, माँ, बाप, भाई, बहन और सगा-सम्बन्धी, तब वे जाँय कहाँ ? करे क्या ? जीवन के ठहराव के लिये कोई न कोई आश्रय तो होना ही चाहिये। रोती हुई वेश्याओ की गोद में मुँह छिपा लेती हैं और बिताने लगती हैं कुत्सित जीवन। एक वेश्या ने "मैं कैसे वेश्या हुई" शीर्षक देकर खींचा है एक स्थान पर अपनी विवशता और वेदना का चित्र। देखो उस चित्र को सरला ! उससे नारी के दयनीय जीवन पर एक बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह लिखती है—

"मैं वेश्या हूँ, समाज मे सबसे अधिक पतिता। पर कौन कहता है, मै सबसे अधिक पतिता हूँ, सबसे अधिक कुत्सिता हूँ और हूँ सबसे अधिक उपेक्षिता। दिनके प्रकाश में मुझे कुत्सिता कहने वाला समाज रात के अन्धकार में मेरे पैरो के पास बैठकर मेरी पूजा करता है, मेरे यौवन की आरती उतारता है। वैसी पूजा कभी न होती होगी किसी सम्मानित नारी की, वैसी आरती कभी न उतारी जाती होगी किसी सुहागिन नारी की। मैं कितनी प्रसन्न होती हूँ और कितनी आह्लादित ! हँसती, मुसुकुराती हुई समाज के नर-पुंगवो को अपने गले लगाती हूँ और दौड़ाती हूँ उनकी

रगों में विजली। साथ ही अपने यौवन-उन्माद से वेहोश बनाकर उन्हें पिलाती हूँ विष का प्याला। सचमुच मैं उन्हें विष का प्याला पिलाती हूँ, उनके अन्तर में जहर घोलती हूँ। एक दिन उन्होने मेरे जीवन को दुःख की झाड़ियो मे फेक कर मेरे कलेजे को छलनी किया था, और आज मैं फाड़ती हूँ अपने नखो से उनके अन्तर को। मैंने न जाने कितने पुरुषो के कलेजे को चीर डाला है और वनाया है उन्हें पंथ का भिखारी। मेरी प्रति हिन्सा की आग! यदि मेरा वश चले तो मै एक एक पुरुष को पथ का भिखारी बना दूँ, उसकी वासना के घर में आग लगाकर उसके कलेजे को खीच लूँ। किसने लगाई है आग मेरे जीवन मे ? किसने जलाई है मेरे जीवन की झोपड़ी अपनी वासना की आग मे ? किसने मेरे नारीत्व को लूटकर मुझे विवश किया है यह कुत्सित जीवन बिताने के लिये ?—इन्ही नर-पुंगवो ने, समाज के इन्हीं सत्ताधारियों ने। समाज की छाती पर पाप का हाट लगाकर वैठी हुई हम सब वेश्याये इन्ही के अत्याचारो की प्रतीक हैं। इसलिये हम सब वेश्यायें भी इनके कमर मे अपना तीर घुसेड़ते हुए संकोच नही करतीं, ओठो पर उफ तक नही लातीं!

मेरे जीवन की वह पिछली कहानी वेदना और दर्द से भरी हुई है। यदि कोई इस दुनिया में घूमकर देखे तो उसे एक-एक वेश्या के जीवन मे मिलेगी दुख-दर्द की भयानक कहानी। ऐसी कहानी, जिसे सुनकर करुणा तक कॉप उठेगी, ऑखो से ऑसू उगल देगी। समाज आज जगत के सामने मुझे कहता है उपेक्षिता, पर मै हूँ कौन ?—समाज के एक सम्भ्रान्त कुलकी कन्या! मेरे पिता गरीब थे, कठिनाई से अपना जीवन बितारहे थे। ज्यो-ज्यो मै उम्र को पार करती थी, त्यो-त्यो उनके सामने

खिचता था एक भयानक चित्र। मैं उन दिनो आठवे वर्ष को पार कर रही थी। मुझे स्मरण है, मेरे माँ-बाप प्राय: मेरे विवाह की चर्चा चलाकर यह कहा करते थे कि लड़की बढ़ती जा रही है। इसके विवाह के लिये कहाँ से आयेगा रुपया। केवल दहेज के लिये ही एक हजार चाहिये। कहना न होगा कि मै ज्यो-ज्यो बढ़ रही थी, पिता के ऊपर एक भार सी लदती जा रही थी। आखिर दस वर्ष की होते-होते एक वृद्ध पुरुष के हाथ में मेरा हाथ देकर पिता ने अपने को भार से मुक्त कर लिया। मै घर से निकल गई, उनकी सारी चिन्ताऍ दूर हो गईं, उनके सिर का सारा बोझ हलका हो गया। उन्होने मुझे पैदा करके मेरा हाथ एक बूड्ढे के हाथ मे दे दिया, उनके लिये यही क्या कम था? अब मै चाहे आग से खेलूँ, चाहे सुख के दिन बिताऊँ, यह है मेरे भाग्य की बात।

जिनके जीवन के साथ मेरा बाँधा गया था जीवन, वे भी एक सम्मानित व्यक्ति थे, समाज के एक उच्च स्तम्भ थे। वृद्ध हो गये थे, पर नई नई नारियो को अपने जीवन से बाँधने की अभिलाषा अभी तक हृदय मे अवशेष थी। चार चार स्त्रियों को मृत्यु के घाट पर पहुँचा आये थे, और पाँचवी अब मै थी। घर में पर्याप्त सम्पत्ती थी, पर उपभोग करने वाला कोई नही। केवल वे, उनका युवक पुत्र और उसकी बहू। मैंने आकर अब एक संख्या बढ़ाकर चार कर दी थी। पूरे दो वर्ष भी न बीतने पाये थे, कि उनके जीवन का तरु हिल उठा, और मेरे जीवन को वे दु:खों का संसार बना कर इस लोक से चल बसे। मै विधवा हो गई और हो गई निराश्रिता। पर मेरा यौवन विधवा न हो सका। वह जैसे फूटा रहा था, वैसा ही फूटता गया। घर में थी मैं, रमेश और रमेश की बहू। वे अपने मरने के पश्चात्

जिस पुत्र को छोड़ गये थे, उसका नाम था रमेश। वह उनकी पहली विवाहिता पत्नी से था। मेरे अङ्ग अङ्ग में यौवन का उन्माद था। मैं एक मुरझाई कली की तरह थी अवश्य, किन्तु यौवन के उन्माद के कारण वे सूखती हुई डाले भी जैसे अपने भीतर रस सा छिपाये हुई थी। रमेश अपनी आँखो को रोक न सका। वह मुझे देखने लगा, और देखने लगा एक पिपासु की भाँति। उसने अपनी पत्नी को उसके मैके भेज दिया, और वह ढूँढ़ने लगा अपनी प्यास बुझाने का स्वतन्त्रतापूर्वक अवसर। मैं अनभिज्ञ थी, बिलकुल अनभिज्ञ। मुझे कल्पना तक न थी, कि वह भीतर ही भीतर अपनी सौतेली माँ के जीवन को वासना की आग मे झोकने की तैयारी कर रहा है। वह रात ? मेरे पतन की रात थी। बादल घिरे थे। पानी बरस रहा था। मैं निश्चिन्ततापूर्वक सोई थी अपने कमरे में। सावन की हवा ने भड़का दिया उसकी कामाग्नि को। वह धीरे-धीरे मेरे कमरे मे घुसा, और उसने कर दिया मेरे जीवन का सर्वनाश। मै रोने लगी, सिर धुन धुन कर सिसकियाँ भरने लगी, पर अब हो सकता था क्या ? सब कुछ धूल मे मिल चुका था, आग में जल चुका था, बच गई केवल राख। रमेश ने मुझे समझाया, मुझे सान्त्वना दी और फेका मेरे जीवन के सामने प्रलोभन। मै भी हारी हुई की भाँति उस राख को उसके ऊपर उछाल कर स्वतन्त्रतापूर्वक उसके साथ खेलने लगी। मेरे उस खेल का परिणाम! वही, जो स्त्री पुरुप के सम्मिलन का होता है। मैं गर्भवती हो गई।

रमेश आशंका से काँप उठा, और खिंच उठा उसके सामने एक भयावन-चित्र! क्या होगा अब ? कैसे दिखायेगे समाज में अपना मुँह ? वह प्राय: इसी चिन्ता में जला जा रहा था। मैं भी कभी कभी चिन्ता से काँप

उठती थी । पर जब देखती थी अपनी आँखो के सामने रमेश को, तब मेरी सारी चिन्तायें दूर हो जाती थीं । मैंने उस पर विश्वास किया था, और विश्वास किया था सच्चे मन से । मुझे आशा न थी, कि वह मुझे विपत्ति की झाड़ी में छोड़ देगा । उसने मुझे वचन दिया था, रहेंगे एक साथ, जियेंगे एक साथ, और मरेंगे भी एक साथ ! पर जब विपत्ति का उमड़ता हुआ समुद्र सामने आया, तब वह सब कुछ भूल गया । उसके हृदय मे मेरे प्रति न प्रेम रह गया, और न सहानुभूति । वह वज्र की भाँति कठोर हो गया, अधिक निर्मम । वह तीर्थ यात्रा कराने के उद्देश्य से मुझे साथ लेकर मथुरा गया, और जब मै एक धर्मशाला मे उसके साथ निश्चिन्तता की नींद सो रही थी, वह मुझे छोड़कर चम्पत हो गया । मै जाती तो कहाँ जाती ? करती तो क्या करती ? भाग्य के प्रबल झोको ने इधर से उधर पटकना आरम्भ किया । पहुँचते पहुँचते अन्त में यहाँ तक पहुँची, वेश्या के कोठे पर । अब कदाचित् यहाँ से कहीं न जाऊँगी । यही है पतन की वह सीमा, जहाँ समाज की समस्त उपेक्षिता बहनें आकर निवास करती हैं, यही है वह आश्रय-स्थान, जहाँ साधन और सम्बल से हीन नारियाँ सन्तोष की साँस लेती हैं । मैं भी अब यहाँ सन्तोष की साँस ले रही हूँ और अपनी एक एक साँस मे विष का समुद्र उगल कर समाज को जलाने का प्रयत्न कर रही हूँ।'

देखा तुमने बाल और वृद्ध-विवाह की वेदी पर वलि दी जानेवाली नारी के दयनीय जीवन का चित्र ! न जाने कितने ऐसे चित्र होंगे इस समाज में । प्रति वर्ष ऐसे चित्रो की संख्या बढ़ती जा रही है । लोग देख रहे हैं निरीह बच्चियो को अनबोलती दुलहिनें बनाने का कुफल, पर फिर भी बाल और वृद्ध-विवाह का दहकता हुआ कुण्ड नहीं शान्त हो रहा है, नहीं

बुझ रहा है। निरीह बच्चियाँ उसमें झोकी जा रही हैं। चारो ओर से पाप का धुआँ उठ रहा है। राष्ट्र तिमिराछन्न हो उठा है। राष्ट्र-माता की गोद रोगी और अपाहिज सन्तानो से भरती जा रही है। नवजात बच्चो की मृत्यु-संख्या संसार के सभी देशो के बच्चो की मृत्यु संख्या से अधिक होकर राष्ट्र के मुख पर कालिख पोत रही है। घर से भाग-भागकर विधवाये समाज और राष्ट्र को रौरव नरक की ओर ले जा रही हैं, पर क्या इतने पर भी पुरुषो की चेतना झंकृत हो रही है? इतने पर भी क्या उनके हाथ बन्द हो रहे हैं? अपने ही हृदय से पूछकर देखो सरला, वह क्या कहता है, क्या कहता है?

तुम्हारी अभागी बहन

मोहिनी
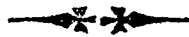
सताई हुई सती

बनारस

१४—४—४१

प्रिय सरला !

तुम्हारा पत्र मिला । तुमने अपने पत्र की पंक्तियो में पढ़ने का जो मुझे उपदेश दिया है, उसे भी मैने पढ़ा । तुम परिचित हो मेरी प्रकृति से और जानती हो मेरे जीवन को । विवाह के पूर्व अध्ययन के प्रति कितनी उमंगे थीं मेरे हृदय में, कितनी अभिलाषायें थी मेरे मन में । मैने सोचा था, विवाह के पश्चात् भी जारी रक्खूॅगी अपने अध्ययन को और अपने जीवन-सहचर की सहायता से निकल जाऊॅगी बहुत आगे । पर विवाह के पश्चात् तो मैने देखा वैवाहिक जीवन में नारी के लिये अंधकार! नारी इस जीवन मे प्रवेश करने के पश्चात् फिर कुछ नहीं कर सकती । वह चाहे जितनी उमंगे और उन्नत आकाक्षाओ को लेकर इस जीवन मे प्रवेश करे, पर इस जीवन के ऑगन मे पैर रखते ही उसकी सभी उन्नत आकॉक्षाओ को धू-धू करके जल जाना होता है । जल जाना होता है इसलिये कि यहॉ नारी को 'सती' और 'लक्ष्मी' की बहुत वडी परीक्षा पास करनी होती है । इस परीक्षा के सामने उसकी सारी आकाक्षाये दब जाती हैं और पिस उठती हैं महत्त्वपूर्ण अभिलाषाये । वह अपने जीवन की समस्त महत्त्वपूर्ण अभिलाषाओ को

त्याग कर करने लगती हैं इस परीक्षा की तैयारी । अन्यान्य परीक्षाओ की भाँति इस परीक्षा मे पुस्तकें पढ़नी नहीं होतीं, पाठ रटने नहीं होते और न जाना पड़ता है किसी पाठालय में । इस परीक्षा को पास करने के लिये तो नारी को आग में जलना होता है, अपने को धधकते हुए कुण्ड में जलाना होता है । बडी भयानक है उसके जीवन के लिये सती और लक्ष्मी की परीक्षा, बडे दुरूह हैं इन परीक्षाओ के पाठ । डालो जरा उन पाठो पर एक दृष्टि । कालेज की पाठ्य पुस्तकों के अनेक पाठो को देखते-देखते याद कर ले जानेवाली तुम्हारी आत्मा भी उन्हें देखकर कम्पित हो उठेगी।

वह प्रातःकाल पाँच बजे अपनी शय्या छोड देती है । दैनिक कार्य्यों से अवकाश पाने के पश्चात् झाड़ू लेकर घर मे जुट पड़ती है । घर आँगन साफ करती है । कमरे कमरे मे झाड़ू लगाती है । मेज़ कुर्सियां, आल्मारियाँ पोंछती है और फिर घर के कूड़े को उठाकर उसे कूड़ेखाने में डालती है । इधर से कुछ अवकाश मिला नहीं कि बच्चे रोते-चीखते हुये उठ बैठते हैं और माँ माँ की पुकार से घर को प्रतिध्वनित कर देते हैं । वह दौड़ी हुई बच्चो के पास जाती है, उन्हें मल-मूत्र कराती है । उनके मल-मूत्र को साफ करके उन्हें खिलाती-पिलाती है और फिर बर्तनो की सफाई में लग जाती है । घण्टे-दो घण्टे के पश्चात् जब इस काम से अवकाश पाती है तब स्नान करने जाती है । स्नान करने के समय बच्चो के सारे गन्दे कपड़ो को फींचती है और फिर स्नान करके चूल्हे के पास जा बैठती है । भोजन बनाती है । सबको खिलाती है और अन्त मे स्वयं भोजन करने के पश्चात् सासजी के पास जा बैठती है । फिर चलता है सास और ननदो की सेवा का काम । किसी के सिर में तेल मला जाता

है तो दाबे जाते हैं किसी के पैर। दो-एक घंटे के पश्चात् फिर वही पुराना चक्र आरम्भ हो जाता है और वह रात के दस बजे तक चलता रहता है। दस बजे के पश्चात् जब वह अवकाश पाती है तब फिर चलता है सेवा का वही काम। जब सारा संसार नींद मे सोता है, तब वह सास जी के पैरो के पास बैठकर दाबती है उनके पैर! ये पाठ हैं सती और लक्ष्मी की परीक्षा-पुस्तको के सरला! इन पाठो के अतिरिक्त समय-समय पर उस बेचारी को और भी बहुत से पाठ पढने पड़ते हैं। जैसे चक्की चलाना, गोबर पाथना, सीना-पिरोना, बिछौने लगाना, पति का ध्यान रखना, बच्चो को सँभालना, घर-गृहस्थी सँवारना और हर एक की रुचि का खयाल रखना इत्यादि इत्यादि। इतने पाठा को भलीभाँति पढ लेने के पश्चात् सास रूपी परीक्षक की दृष्टि में जो नारी हो जाती है अधिक प्रवीण, उसी को मिलती है सती और लक्ष्मी की महत्त्वपूर्ण उपाधि! मैंने भी अपनी आकाक्षाओ को धूल में मिलाकर इन उपाधियो को प्राप्त करने का प्रयत्न किया था सरला, पर मैं तो परीक्षा मे पास न हो सकी, और प्राप्त न कर सकी उन महत्त्वपूर्ण उपाधियो को, बैठ न सकी पास होने वाली उन बहनो की पंक्तियो में!!

मै भी चली थी प्रयत्न के उस मार्ग पर, पर मै कुछ दूर जाने के पश्चात् ही अविचलित हो उठी, उसकी भयंकरता को देखकर काँप उठी। यदि औरो की भाँति मै भी होती निरीह और ज्ञान से शून्य, तो कदाचित् औरो की भाँति ही मे भी रक्त का घूँट पीती हुई चुपचाप उस मार्ग पर चली जाती, पर मेरी चेतना ने बीच ही मे मुझे जगा दिया और मैं एक विद्रोहिनी सी पूँछ बैठी अपने अन्तर से, मै क्या बन रही हूँ, लक्ष्मी या

चेरी, सती या बिकी हुई दासी ? मेरे अन्तर के कोने-कोने से :आवाज़ निकली, चेरी, चेरी ! मै कॉप उठी और करने लगी विद्रोह ! मैने अपनी ऑखों को पसार कर देखा, सचमुच मैं चेरी थी, सचमुच मैं सारे घर की दासी थी। सती और लक्ष्मी की तो उस पर वार्निश की गई थी, पर वास्तव में थी मैं चेरी ! घर का हर एक व्यक्ति मुझ पर अपना अधिकार प्रगट करता था। बच्चा से लेकर बूढ़ा तक यही चाहता था, कि मैं हर एक की अभिलाषाओं पर फिरहरि की भॉति नाचूॅ, हर एक की सेवाग्नि में अपने को जलाऊॅ, और करूॅ हर एक की इच्छाओ को पूर्ति ! सास, ननॅद, जेठ, देवर, पति और ससुर सब यही चाहते थे, कि मैं चुपचाप दिन दिन-भर नाचती रहूॅ, और नाच-नाच कर लोगो के मुख से यह सुनती रहॅू, कि मैं सती हॅू, सती ! उनकी दृष्टि में सती और लक्ष्मी को भूख नहीं लगती, प्यास मालूम नही होती और न आती है उसके शरीर मे विश्रान्ति ! वह पीडा और थकावट से बहुत दूर कार्यों के बहुत बड़े पर्वत को भी अपनी छाती पर लाद सकती है और लाद कर बड़ी सरलता से बढ़ा सकती है जीवन के मार्ग पर पैर ! इसीलिये वे उसे अपनी सेवा की गाड़ी में बैल की भॉति जोते रहना चाहते है। धन्य है उस सती का वह जीवन ! सचमुच वह सती है, सचमुच वह लक्ष्मी है ! सती और लक्ष्मी को छोड़-कर कौन विष का घूॅट पी सकती है, कौन दया क्षमा से शून्य जगत में अपने को डाल सकती है आग मे !!

मैंने देखा था, वेद के पन्नो में सती और लक्ष्मी का जीवन। सती घर की स्वामिनी थी, लक्ष्मी घर का चिराग थी। सब उसकी पूजा करते थे, और करते थे उसके प्रति अपना प्रगट सम्मान। घर में कोई भी काम होता,

उससे पूछ लिया जाता। उसकी सम्मति एक सम्मति होती थी। उसकी राय एक राय होती थी। जिस कार्य के प्रति वह अपनी असम्मति प्रगट करती, कभी न होता वह काम उस घर में। घर की एक-एक वस्तु पर उसका अधिकार था, घर के कोने-कोने में उसका राज्य था। घर मे प्रवेश करते ही सास-ससुर उसे अपनी सम्पत्ति सौंप देते थे। वह जिस प्रकार अपने अन्त:पुर में रानी की भाँति निवास करती थी, उसी तरह वाह्य जगत में भी उसके मानवी अधिकारो पर बन्धन न था, प्रतिबन्ध न था। उसे जब मिलते थे सास-ससुर और कुटुम्बियो की ओर से इतने मानवी अधिकार, तब वह सचमुच सास-ससुर और गुरुजनो की सेवा करके बनती थी सती और लक्ष्मी, किन्तु आज कहाँ हैं गृह जीवन में वे बातें, कहाँ है अन्त:पुर में उसके प्रति वह सम्मान! इसमें सन्देह नहीं कि लोग आज भी नारी को सती और लक्ष्मी के रूप में देखना चाहते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि नारी सती और लक्ष्मी कैसे बन सकती हैं? नारी को सती और लक्ष्मी बनाने के पहले लोगों को स्वयं गृहदेवता बनना चाहिये। जिस प्रकार देवता के हृदय में दैवत्त्व होता है, उसी प्रकार मनुष्यो के हृदय मे होनी चाहिये मानवता। आज के समाज के पुरुष कहने के लिये मनुष्य हैं, पर उनके हृदय में कहाँ मानवता है, कहाँ हैं उनके अन्तर में मानवी गुण। क्या इसी का नाम मानवता है कि वे नारी को सती और लक्ष्मी बनाने के बहाने उसके समस्त मानवी अधिकारो को छीनकर उसे जीवन के मरु-स्थल में पटक दें? क्या इसी का नाम है सभ्यता कि वे नारी को तो अत्याचार की आग में जलाकर उसे सती बनायें और स्वयं कुछ न बनें? पुरुषो की इसी स्वार्थ-भावना ने तो मुझे विद्रोहिनी बना दिया है सरला,

और मैं अब करने लगी हूँ परिस्थितियो से संघर्ष! अब मैं आज्ञाओं पर नहीं नाचती, कठपुतली की तरह इधर से उधर नहीं घूमती, और न जलाती हूँ लोगो की सेवाग्नि में अपने शरीर को। जिसे उचित समझती हूँ, प्रसन्नतापूर्वक करती हूँ, और जिसे अनुचित समझती हूँ भरसक करती हूँ उसका विरोध, पर मेरा उचित भी लोगो की दृष्टि में अनुचित समझ पड़ता है। लोग अपने अधिकारों का पर्वत पथ में खड़ाकर मेरी प्रगति को रोक देना चाहते हैं, और मै चाहती हूँ उसे तोड़ कर आगे निकल जाना, बहुत आगे निकल जाना।

इसका परिणाम! घर कलह की चिनगारियो से भर उठा है। एक ओर मै हूँ, और दूसरी ओर हैं सास ननदे। पति देवता भी खिंचे खिंचे रहते हैं। ऐसा कोई दिन खाली नहीं जाता, जिस दिन घर मे कलह की आग न जलती हो। अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिये लोगो ने मुझे अत्याचार की आग में जी भर कर जलाया। कई रातें मेरी रोते ही बीत गईं, और बीत गईं बिना अन्न जल के। लोग घर मे खाते थे, आनन्द से जीवन बिताते थे, और मैं घर की लक्ष्मी घर के कोने में पड़ी-पड़ी आँसू बहाया करती थी। मनुष्यता के नाम पर भी मेरे पास कोई न जाता था। मुझसे कोई यह तक भी न पूछता था, कि जीवित हो या नही! जानती हो मेरा अपराध क्या था सरला? यही, कि मैं एक मनुष्य की भाँति अपने घर में रहना चाहती थी। मै चाहती थी, कि जब लोग मुझे अपनी सेवा की आग मे जलाना चाहते हैं, तब उन्हें भी चाहिये, कि वे मुझे अपनी सहानुभूति दें, अपने अन्तर का प्यार दे ओर दें पीड़ा-दुख में अपनी हार्दिक समवेदना। मेरा सारा विद्रोह इसी के लिये था, मेरा अन्तर चिल्ला-

चिल्ला कर लोगो से माँगता था सहानुभूति और मांगता था, अन्तर का प्यार, पर सहानुभूति और प्यार देने को कौन कहे, वे कर रहे थे मिलकर मेरे जीवन के साथ अत्याचार। उन्ही के अत्याचारो ने मुझे सर्पिणी की भाँति अपने पथ पर लाकर खड़ा कर दिया है, और अब मै उनके अत्याचारो को देख-देख कर छोड़ने लगी हूँ फूतकार! मेरी फूतकार को देख कर सबके सब सिहर गये हैं, भय से कम्पित हो उठे हैं। घर में भयानक रूप से कलह की आग जलती है, पर अब किसी का साहस नही होता, कि कोई मुझे सताये, कोई मेरे जीवन को अत्याचार की आग में भूँजे।'

सुनो सरला, सुनो, हमारे घरो के भीतर से आता हुआ यह कैसा भयानक चीत्कार है? करुणा से लदी हुई ये सिसकियाँ कितनी जोरदार हैं! मासपेशियो को तोड़-फोड़कर बरबस अन्तर के पर्दे मे घुसी जा रही हैं. किन्तु क्या तुम जानती हो बहन, ये किसकी सिसकियाँ हैं? किसका चीत्कार है? उन्ही सतियो का, जो अंचल पसार-पसार कर अपने घर के मालिको से अपने नारी जीवन के लिये सहानुभूति माँग रही हैं, और इसी भयानक अपराध के परिणाम स्वरूप उन पर हो रहे हैं तरह-तरह के अत्याचार! उन पर होने वाले वे दारुण अत्याचार! स्मृति मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और दौड़ पड़ती है रग-रग में करुणा की धारा! उन पर जिस तरह उनके कुटुम्बियो के हाथ उठते हैं, क्या किसी दानव के किसी पर उठेगे? वे जिस प्रकार अपने कहे जाने वाले मनुष्यो के द्वारा जलाई जाती हैं आग मे, क्या कोई जलाया जायगा किसी पिशाच के द्वारा? उनकी स्थिति बड़ी दयनीय है। बड़ी संकटापन्न। वे रात रात भर वन्दिनी की भाँति अंधकारपूर्ण घरो, में बन्द रक्खी जाती हैं, भूख प्यास की ज्वाला

से तड़पायी जाती हैं, और होता है उनकी पीठपर लात-घूँसा तथा डण्डो का प्रहार। बहुत से घरो में उनकी आपदा इससे भी आगे बढ़ जाती है, बहुत आगे। उनके हाथ-पैर बाँध दिये जाते हैं, शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी जाती है, और? और लोहे की सलाखें गर्म कर उनके शरीर मे छुआई जाती हैं। ये कल्पना की बाते नही सरला, सत्य हैं। समाचारपत्रों में रोज़ ही ऐसी दर्दीली कहानिया छपती ही रहती हैं। सुनो एक युवक के मुख से एक ऐसी ही विपन्न नारी की कहानी:—

'मेरे हृदय में जब तरुण उमंगे उठी, तब मै वेश्याओ के कोठे पर जाने लगा। मै आज एक की स्वर लहरी से आनन्द उठाता, तो कल दूसरी की! मै उस हाट में अपनी विक्षत उमंगो को चारो ओर बिखेर कर बड़ी स्वतंत्रता से खेल रहा था, किन्तु एक दिन! हाँ एक दिन एक नारी की जीवन कहानी ने मेरा मार्ग रोक लिया। उसकी वह कहानी! करुणा से लदी हुई थी, पीड़ा से चीत्कार कर रही थी। मै साहस न कर सका, कि करुणा से लदी हुई उस कहानी को अपने जीवन-पथ से बटोर कर एक ओर कर दूँ! आखिर उससे पीड़ित होकर मैंने उस हाट में जाना ही छोड़ दिया, जाना ही छोड़ दिया!!

उसकी वह कहानी! अब भी जब मैं कभी उसे सोचता हूँ, तब अन्तर से अपने आप यह निकल पड़ता है, कि क्या मनुष्यो की दुनिया में ऐसे दानव भी हैं, ऐसे पिशाच भी हैं? ऐसी मनुष्यों की दुनिया! शीघ्र से शीघ्र उसे जल कर खाक़ हो जाना चाहिये, पतन के महा सागर में डूब जाना चाहिये। देखिये मनुष्यो की दुनिया की दानवता का चित्र! मै कह चुका हूँ, कि मै वेश्याओ के हाट में उमंगो के साथ खेल रहा था।

खेलते खेलते एक द्वार पर मेरी आँखें कुछ ठहर गईं। उसका नाम था चम्पा। वह सचमुच चम्पा थी। वह रोज मुझे अपनी ओर खींचती थी, पर सब से अधिक खींचती थी मुझे चम्पा की वह दासी, जिसके चमकते हुये मुखड़े के ऊपर दो जगह मास के दो लोथड़े निकल आये थे, और जिनके कारण उसका मुख विकृत हो गया था, अधिक विकृत! मैं प्रति दिन उसे ध्यान से देखता और न जाने क्यो बार-बार अपने अन्तर से पूछता, क्यो हो गया इसका मुख विकृत? क्यो पड़ गया इसके चाँद से ऐसे चेहरे पर धब्बा! रोगो से तो ऐसे धब्बे पडते नहीं। आखिर मैं पूछ बैठा एक दिन चम्पा, से चम्पा यह कौन है? इसके चेहरे पर माँस के ये लोथड़े कैसे निकल आये?' चम्पा ने उत्तर दिया, क्या करोगे जानकर उसकी कहानी?

मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैं उसकी कहानी जानने के लिये अधिक व्यग्र हो उठा। चम्पा ने उसे मेरे सामने बुला दिया। वह सिर झुकाकर बैठ गई। उसका नाम राधा था। मैंने उससे पूछा, राधा तुम्हारा चेहरा यह कैसे खराब हो गया? वह कुछ देर तक चुप रही। फिर उसने बड़ी ही पीड़ा के साथ कहा, मेरी सासने लोहे की सलाखे गर्म करके मेरे चेहरे का दाग दिया था?' मै उसकी बात सुनते ही चमत्कृत हो उठा और साश्चर्य मेरे मुख से निकल पड़ा तुम्हारी सास ने।' उसने उत्तर दिया, हाँ मेरी सास ने। मैंने कहा, क्यो? क्या मैं सुन सकता हूँ तुम्हारी कहानी?' वह कुछ देर तक चुप रही। फिर उसने बड़ी ही पीडा के साथ कहा, सुनिये! वह दर्द भरी

आवाज़ मे कहने लगी और मै कलेजे को थाम कर सुनने लगा उसकी कहानी—

मेरा विवाह एक सम्पन्न परिवार में हुआ था । सम्पन्न इसलिये कि खाने-पहनने की कमी न थी । पति-देवता डेढ़ सौ रुपये मासिक पर एक मिल मे नौकर थे । घर मे पति के अतिरिक्त सास और दो ननॅदे थी। विवाह के पश्चात् पहले पहल जब मैंने घरके ऑगन मे पैर रक्खा था, तब सास ने कर्कश आवाज में ही मेरा स्वागत किया था । उनकी वह आवाज धीरे-धीरे अधिक गम्भीर हो उठी । ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे, त्यो-त्यो वे अपने व्यंग्य-बाणों से मेरे हृदय को छलनी करने लगीं । मै चाहती थी वे मुझसे प्रसन्न रहे, मुझे अपने अन्तर का प्यार दे । मैं इसके लिये शक्ति भर प्रयत्न भी करती थी, किन्तु न जाने क्या वे मुझे आग मे जलाना ही अपना धर्म समझती थी । उनकी ऑखो के लिये मै शूल थी, कॉटा ! मेरी एक-एक चीज उनकी ऑखो मे शूल की भॉति खटकती— खाना, पहनना, उठना, बैठना सब कुछ । घर मे उनका इतना आतंक था कि पति-देवता भी उनके डर से मुझसे बहुत कम मिला करते थे । जब कभी वे देखती कि मै अपने पति के कमरे मे जा रही हूॅ या वे मेरे कमरे मे आ रहे है, तब वे आग-बबूला हो उठतीं और छोड़ने लगती अपने मुख से विष की पिचकारियॉ। वे अपने विषैले बाणो से खोद-खोद कर जलाने लगी मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की आग और मै भी करने लगी उनकी बातो का विरोध । फिर क्या ? फिर तो घर मे तुमुल युद्ध होने लगा, तुमुल संग्राम ।

मै सासजी से रहती थी सदा सतर्क । मैं जानती थी कि वे मुझे

अपनी शक्ति भर सर्वनाश की आग मे झोंकने का प्रयत्न अवश्य करेगी, किन्तु उनके बिछाये हुए जालो के सम्मुख मेरी सतर्कता काम न दे सकी। मै उनके जाल मे फँस गई। उन्होने बडे ही कपट-अभिनय के साथ एक युवक को मेरे कमरे में बन्द करके लगा दिया मेरे चरित्र पर लाछन। जिस समय वे मुझे और उस युवक को इसके लिये फटकार बता रही थीं, उसी समय बाहर से आ गये पति महाशय! शायद उन्हे दिखाने के लिये ही सासजी ने किया था यह अभिनय! सासजी के मुख से सारी बाते सुनकर उन्होने उस युवक से पूछा। वह कायर युवक! उसने मेरे जीवन को धूल में मिला दिया और झोक दिया मुझे सर्वनाश की आग में। उसने मेरे और अपने प्रेम की एक विचित्र कहानी कह डाली उनके सामने। सासजी ने ही यह कहानी गढ़ कर उसे सिखाई थी। मै उस कहानी को सुनकर पत्ते की भाँति काँप उठी। इधर मैं काँप उठी और उधर निकल पड़ीं पति देवता की आँखो से क्रोध की चिनगारियाँ! मै अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिये उनके चरणो पर अपना मस्तक पटकना ही चाहती थी कि उन्होने बड़े जोर से मेरी छाती मे लात प्रहार करके कहा—इसके चेहरे को झुलस कर निकाल दो इस बदजात को घरके बाहर। मै भूमि पर गिरकर आँसू बहाने लगी। जब तक रात न हुई मेरे पास कोई न आया। रात का अन्धकार बढ़ते ही मुझे डाकू की भाँति पकड़ लिया गया और आग के समान दहकती हुई लोहे को दो सलाखें मेरे दोनों गाल से छुआ दी गई। मै तड़प उठी, चीत्कार करके भूमि पर गिर पड़ी। मुझे उसी अवस्था मे लोगों ने निकाल कर कर दिया घर के बाहर। मैं कबतक बाहर मूर्च्छा की गोद मे पड़ी रही, यह मैं नहीं जानती! पीड़ा से कराहती हुई

जब मैंने अपनी ऑखो को खोला, तब मैंने देखा ये बहन मुझे अपनी गोद में लेकर धीरे-धीरे मेरे बालों को सहला रही थी।'

अपनी कहानी खतम कर वह रोने लगी और मैं पागल की भॉति देखने लगा उसका मुख। मैं नहीं जानता, मेरे हृदय मे हो रहा था उस समय कैसा द्वन्द! मैं न जाने क्यो 'उफ्' करके चुपचाप उठा और अपने घर चला आया। राधा की जीवन-कहानी सदैव मेरे हृदय में एक द्वन्द सा खड़ा किये रहती है और मै यह सोचता रहता हूॅ कि जिस समाज की गोद मे ऐसे नर-राक्षस हैं, क्या उसका भी कभी कल्याण हो सकता है, क्या वह भी कभी ऊपर उठ सकता है?"

सुन ली तुमने सती की कहानी सरला, देख लिया तुमने लक्ष्मी के जीवन का चित्र! यदि तुम हमारे अन्तःपुरो में घुसो, तो तुम्हें देखने को मिलेंगे अनेक ऐसे चित्र, सुनने को मिलेंगी अनेक ऐसी कहानियॉ! पर सवाल उठता है, क्यों ऐसा होता है सरला, क्यो? क्यो लोग एक नारी को, ऐसी नारी को जो ससुराल के कुटुम्बियों के लिये अपने मा-बाप और भाई-बहनो का भी परित्याग कर देती है, अत्याचार की आग में सुलाते हैं और क्यो करते हैं उसके जीवन के साथ अनेक प्रकार के अन्याय! क्या सती और लक्ष्मी के जीवन की यही परिभाषा है? क्या इसीलिये वह वेचारी उत्सर्ग के गीत गाती हुई रखती है ससुराल के आगन में पैर? कौन उत्तर दे इस सवाल का? समाज चुप है। संसार चुप है। प्रतिदिन तो उसकी जीवन कहानियॉ समाज और संसार की दीवालों को बजा बजा कर उससे यह पूछती हैं कि क्यो ऐसा होता है, क्यों? पर फिर भी

समाज नहीं बोलता, संसार अपना मुख नहीं खोलता। खोले कैसे समाज अपना मुख सरला! उसी ने तो बड़े कौशल के साथ उसके दासी जीवन पर सती और लक्ष्मी की पालिश की है, उसी ने तो उसे भ्रान्ति के पर्दे में डालकर बना दिया है उसके जीवन को अधिक विपन्न और उसी ने तो घर घर में बच्चे की भाँति पाला है इस भाव को, कि नारी पर सबका होता है अधिकार! इसी अधिकार-भावना के कारण तो वह बेचारी सारे घर की दासी समझी जाती है, सास, ससुर, पति, जेठ, देवर, ननँदे, सभी उस पर अपना अधिकार प्रगट करते हैं। वे उस अधिकार की शराब के नशे में इतने बेहोश हो जाते है कि उन्हें इतना भी ध्यान नहीं रह जाता कि वह भी मनुष्य है और उसके भी हैं घर में कुछ मानवी अधिकार। वह शोक से सन्तप्त होकर अपने मानवी-अधिकारो ही के लिये तो लोगो के सामने अपना अंचल पसारती है, पर सरला उसका यह अंचल पसारना ही उसके जीवन के लिये हो जाता है अधिक विघातक! इसीलिये घरो में छिटकती हैं कलह की चिनगारियाँ और इसीलिये जलाया जाता है उसका जीवन अत्याचार की आग में, पर वह बेचारी करे क्या? तुम्ही इसका फैसला करो सरला तुम्हीः—

'वह सती की तरह आग की ज्वाला में जले या करे प्रेम, सहानुभूति, और अपने मानवी-अधिकारो के लिये विद्रोह!'

तुम्हारी बहन

मोहिनी

मनोरंजन की गुड़िया

बनारस

१६–४–४१

प्रिय बहन सरला !

तुमने महाभारत तो पढ़ा होगा ! तुमने महाभारत मे द्रौपदी की वह कहानी भी पढी होगी, जिसमें दुःशासन के द्वारा उसका चीर खींचे जाने पर योगीश्वर कृष्ण ने द्रौपदी की पुकार पर उसके नारीत्त्व की रक्षा की थी, और तुमने रामायण मे राम-रावण के युद्ध मे सीता जी के लाछित करने पर राम की कोपाग्नि मे रावण को सपरिवार जलता हुआ भी देखा होगा; पर मै तुमसे पूछती हूँ सरला, कि ये बातें किस संसार और किस समाज की हैं ? क्या इस संसार में कभी ऐसे भी पुरुष थे, जिन्होने नारी की मान और मर्यादा की वेदी पर अपने जीवन का सर्वस्व लुटा दिया ? क्या इस समाज की गोद कभी ऐसे पुरुष-रत्नो की ज्योति से चमचमा रही थी, जो नारी को 'सती और लक्ष्मी' के रूप मे देखते थे और जो लुटाने के लिये तैयार रहते थे नारी के अपमान पर अपने पुरुषत्त्व के समस्त वैभवो को। मै तो जब रामायण महाभारत को पढ़ने के पश्चात् आज के गृह-जीवन, समाज, और संसार पर दृष्टि डालती हूँ, तो मुझे यह विश्वास नहीं होता सरला, कि रामायण और महाभारत की ये कहांनियाँ कभी व्यावहारिक रूप में जगत के सामने आई होगी। हो सकता है, कभी समाज और संसार के

पुरुषो के हृदय मे नारी के जीवन के प्रति यह स्वर्गिक सम्मान रहा हो, पर आज के गृह, समाज, और संसार में तो नारी पुरुषो के मनोरंजन का एक साधन मात्र है। एक द्रौपदी के चीर खींचे जाने पर कृष्ण ने महाभारत की सृष्टि की थी, एक सीता के निरादर करने पर राम ने अपने तीव्र बाणो से रावण के कलेजे को बाहर खींच लिया था, पर आज जब सारा का सारा समाज मिल कर स्त्रियो को नग्न कर रहा है और डाल रहा है उनके नारीत्त्व पर डाके, तब न जाने क्यो कृष्ण चुप हैं? न जाने क्यो राम के तीव्र बाण उनके तरकस से बाहर नहीं निकल रहे हैं? राम और कृष्ण की इस मौनिमा को देख कर के ही तो कभी-कभी मै अपने अन्तर से यह पूछ बैठती हूँ कि क्या महाभारत की द्रौपदी की कहानी सत्य है? क्या रामायण की सीता की कहानी कभी व्यावहारिक रूप मे जगत के सामने आई थी?

मेरे हृदय में क्यो न इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो सरला! मै क्यो न अपने अन्तर से यह पूछूँ कि क्या कभी पुरुषो के हृदय में स्त्रियो के प्रति स्वार्थ-रहित सम्मान था? मैं ही नहीं, जो मनुष्य अपनी आँखो से स्वार्थ और पक्षपात को निकाल कर आज के गृह, सामाजिक, और सासारिक जीवन को देखेगा, उसी के मन मे इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न होगा और वही करेगा अपने अन्तर से इस प्रकार का सवाल। आज के समाज और संसार का रूप ही ऐसा है कि वह उसके विश्वास की जड़को भी अधिक कमजोर बना देता है। डालो न आज के समाज और संसार के ऊपर दृष्टि सरला! तुम्हें अपने आप उसका नग्न रूप दिखाई पड़ जायगा, अपने आप तुम्हारी आँखो के सामने वह तस्वीर आ जायगी, जिसमें अनेक द्रौपदी अपनी हया बचाने के लिये रो रो कर पुकार करती होगी, जिसमें

अनेक सीता अशोक वृक्ष की छाया में राक्षसियो से घिरी हुई बैठकर कलप रही होगी। रोज ही तो समाज और संसार में ऐसी घटनायें घटती हैं सरला! कदाचित् ही ऐसा कोई दिन खाली जाता हो, जब कि स्त्रियो का अपहरण न किया जाता हो और न डाले जाते हो उनके स्त्रीत्त्व पर डाके। छोटी छोटी कम-वयस्क बालिकाओ का भी बाहर निकलना अधिक कठिन हो गया है। पढ़े-लिखे और सभ्य कहे जाने वाले पुरुष भी ऐसी बालिकाओ को धोखे मे डालकर उनके सुकुमार जीवन के साथ अत्याचार करते हुये देखे जाते हैं। साहस क्या किसी सुन्दरी युवती स्त्री में कि वह अकेली कहीं निरापद रूप से यात्रा करे। गुण्डे और आततायी सर्वत्र उसका मार्ग रोक कर खड़े रहते हैं। वह चुपचाप अपने मार्ग पर चलती हुई भी नहीं चलने पाती। गुण्डे अवसर पाकर या तो उस पर आक्रमण करते हैं, और या अपने व्यंग-बाणो से उसका हृदय कुरेदते हैं। गुण्डे और आततायी ही क्यों, यही काम तो आज सभ्य कहे जाने वाले समाज के सभी पुरुष भी करते हैं। मै समझती हूँ, तुम्हें पुरुषो की इस मनोवृति का भली भाँति पता भी होगा। पता इसलिये होगा कि तुम में सौन्दर्य है और कर रही हो तुम वनश्री की भाँति फूली हुई अपने यौवन के आँगन में प्रवेश। तुम जब अपने मार्ग पर चलती होगी, तो निश्चय शत-शत पुरुषो की आँखें तुम पर पड़ती होंगी और छोड़ते होंगे टीस के साथ तुम पर वे अपने व्यंग बाण। कहो, है न यह सत्य सरला! तुम कहो या न कहो, पर मैं तो प्रति दिन अपनी आँखो से देखती हूँ। सिनेमा, थियेटर, नुमाइश, सभा-सुसाइटी, सर्वत्र पुरुष स्त्रियो को एक विचित्र दृष्टि से घूरते हैं। उनकी वह दृष्टि! साफ साफ उसमे वासना होती है और होती है कुत्सित भावना। पुरुषों

की इस भयानक दृष्टि से स्कूल जाने वाली बिचारी लडकियाँ तक नही बचने पाती । बहुत से नव युवक तो घूर करके शान्त नही हो जाते, वे स्कूल की गाड़ियो और ताँगो के पीछे अपनी साइकिले भी लगा दिया करते हैं। कुछ का साहस इससे भी आगे जोर मार जाता है और वे किसी न किसी प्रकार ताँगे और साइकिल में सावधानी के साथ भिड़न्त करा दिया करते है । अभी लाहौर की घटना है, साइकिल पर जाती हुई एक युवती कन्या की साइकिल मे अपनी साइकिल भिडा कर एक युवक ने उसे नीचे गिरा दिया था । बेचारी कन्या आहत हो उठी और युवक उसे घूरता हुआ अपनी साइकिल उठा कर भाग गया । एक भद्र महिला ने 'पुरुषो की आँखे' शीर्षक में एक स्थान पर इस सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुये अपने जीवन की एक बड़ी अच्छी कहानी लिखी है । कहानी क्या है, है एक आकस्मिक घटना और वह डालती है 'पुरुषो की इस मनोवृत्ति पर भली भाँति प्रकाश । उन्होने लिखा है—मैं लाहौर से रेल द्वारा अपने पति के साथ कलकत्ते के लिये यात्रा कर रही थी । जब गाड़ी दिल्ली से आगे बढ़ी तब मैंने देखा कि एक मनुष्य मेरी ओर बड़े ध्यान से देख रहा है । उसकी वे आँखे ! उनमे प्रत्यक्षत: वासना थी । जब मै उसकी आँखो से परीशान हो गई, तब मै अपने स्थान से उठी और उसके पास स्वयं जा पहुँची । मैने उससे कहा—'कहिये महाशय, आप मुझसे क्या चाहते हैं ? लीजिये मै स्वयं आपके पास आ गई । अब आपकी आँखों को अधिक कष्ट करने की आवश्यकता न होगी !' डिब्बे मे बैठे हुये सभी यात्री आश्चर्य-चकित हो गये । उसका तो क्षण-क्षण पर अधिक बुरा हाल होता जा रहा था । मैने देखा, उस जाड़े की

ऋतु में भी उसके मस्तक पर पसीने की बूँदें झलक आई। मेरे पति ने उठकर मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपनी ओर खींच लिया। डिब्बे में बैठे हुये कई व्यक्तियों ने उसे इतना फटकारा कि वह लज्जित होकर डिब्बे से उतर गया। यद्यपि उसे फटकार बताने वाले उन व्यक्तियों में से कई ऐसे थे जो आँखें बचा-बचा कर मेरी ओर देख रहे थे, पर इसके पश्चात् फिर किसी ने मेरी ओर देखने का साहस न किया।' एक स्टेशन पर एक स्त्री को इसी के लिये एक मनुष्य की गाल पर चपत लगाने पड़े थे। वह स्त्री भी अपने पति के साथ यात्रा कर रही थी। जब वह एक स्टेशन पर गाड़ी बदलने के लिये उतरी, तब उसका पति प्लेटफार्म पर उसे अकेली छोड़ कर कहीं चला गया। प्लेटफार्म पर जो ही पुरुष उसकी ओर से निकलता, उस पर आँख फेंक दिया करता था। पर एक महाशय को केवल इतने से ही सन्तोष न हुआ। वे उस स्त्री को घूरते हुये लगे उसके चारो ओर चक्कर काटने। उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बेचारे बीच-बीच में खाँसते भी जाते थे। अन्त में जब वह स्त्री उनकी इन दूषित क्रियाओं से आकुल हो उठी, तब आँधी की भाँति उनकी ओर झपट पड़ी और एक ऐसा कस कर चपत लगाया कि बेचारे के हाथ गाल पर जा पड़े। स्टेशन था ही! भीड़ एकत्र हो गई। लोग लगे उनसे इसका कारण पूछने। बेचारे क्या उत्तर दें और वह स्त्री! वह तो उन्हें चपत लगा कर अपने बिस्तर पर जा बैठी थी।

दिल्ली की एक सम्भ्रान्त महिला ने एक स्थान पर इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुये लिखा है—"आज के समाज और संसार में सुन्दरी स्त्री का जीवन अधिक दयनीय हो उठा है। सुन्दरी स्त्री आज के

समाज में न तो कोई काम कर सकती है, और न स्वाधीनतापूर्वक कही आ जा सकती है। पुरुषों की ऑखे सर्वत्र उसके पीछे पीछे लगी रहती हैं। रेल गाड़ियो में यात्रा करना और नुमायशो में जाना तो स्त्रियो के लिये और भी अधिक विपदजनक है। पञ्चानबे प्रतिशत पुरुष रेलगाड़ियो मे यात्रा करती हुई स्त्रियो को ऑखो मे वासना भर कर घूरते हैं। नुमायशो में प्राय; पुरुष औरतो को घूरने के लिये ही वहॉ जाते हैं। सभ्य क्या असभ्य, शिक्षित क्या अशिक्षित, सभी वर्ग के मनुष्य एक ही समान औरतो को रेलगाड़ियो और नुमायशो मे घूरते हुये पाये जाते हैं। बहुत से तो अवसर पाते ही धक्का भी लगा दिया करते हैं। राह चलती हुई सुन्दरी स्त्री को बुरे बुरे गीतो के द्वारा छेड़ना तो एक साधारण सी बात है।" सचमुच सरला आज के समाज में पग-पग पर नारी का अपमान होता है, पग-पग पर उसके सतीत्त्व को लूटने का प्रयत्न किया जाता है। सुन्दरी स्त्री जहॉ घर से बाहर निकली नहीं, कि लोगो की ऑखे उस पर टूट पड़ती हैं। उस बेचारी को पुरुषो की ऑखो से सिर झुका लेना पड़ता है। पुरुष इस सम्बन्ध में कहते हैं—स्त्री सुन्दर होती हैं। उसका सौन्दर्य बरबस ऑँखो को अपनी ओर खीच ही लेता है, पर मैं पूछती हूॅ सरला! कि कितने पुरुष ऐसे हैं जिनकी ऑखे नारी के शरीर में केवल उसका सौन्दर्य निरखती हैं? क्या पुरुष अपने हृदय पर हाथ रखकर इसका उत्तर देगे? पुरुष इसका उत्तर दे या न दें, मै इसका उत्तर तुम्हे दूॅगी सरला! सुनो, ध्यान से सुनो!

जानती हो तुम सरला, पुरुष स्त्रियो को क्यो घूरते हैं? इसलिये कि स्त्रियो को घूरने में पुरुषों का मन-बहलाव होता है। जिस प्रकार अपने

मनोरंजन के लिये पुरुष अनेक प्रकार की चीजें एकत्र करता है, उसी प्रकार वह नारी को भी अपने मनोरंजन का साधन समझता है। आज से नहीं, युग-युगान्तर से पुरुष नारी को इसी रूप में देखता चला आ रहा है। पुरुष को अपनी विश्रान्ति दूर करने के लिये जिस प्रकार शराब तथा अन्यान्य मादक वस्तुओ की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उसकी थकावट को दूर करने के लिये उसे नारी की मुसुकुराहट भी चाहिये। नारी की मुसुकुराहट के लिये ही पुरुषो ने स्त्रियो को वन्दिनी भी बना रक्खा है। आज पुरुष स्त्रियो के ऊपर इस बात का दोष लगाते हैं कि स्त्रियाँ गहने की अधिक शौकीन होती हैं और अपने श्रृङ्गार की वस्तुओ को एकत्र करने मे प्राय: अपनी और अपने पति की परिस्थिति का भी ध्यान नही रखतीं। पर मैं पूछती हूँ सरला, स्त्रियो मे यह प्रवृति पैदा किसने की ? पुरुषो ने। पुरुषो ने जब अपने मनोरंजन के लिये स्त्रियो को वन्दिनी बनाया, तब उसके साथ ही साथ उन्होने यह भी प्रयत्न किया कि स्त्रियाँ देखने में अधिक सुन्दर और आकर्षक मालूम हो। क्यो कि स्त्रियाँ उसी परिस्थिति में पुरुषों के मनोरंजन की उपयुक्त चीज बन सकती हैं, जब वे अधिक आकर्षक बनकर उनकी आँखो में उन्माद घोल सकेगी। पुरुष का यह प्रयत्न और उसकी यह आकाक्षा ही नारी के श्रृङ्गार के रूप में प्रकट हुई है। पुरुषो ने ही अनेक प्रकार के गहने पहना कर नारी को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया है। आज भी हमारे समाज मे ऐसे अनेक पुरुष विद्यमान हैं, जो अपनी रुचि से नारी को अनेक प्रकार के गहनो और कपड़ो से सजाने का प्रयत्न करते हैं। यह सच है कि आज स्त्रियॉ स्वयं अपनी इच्छा से गहनों और कपड़ो की मॉग

उपस्थित करती हैं, पर उसके साथ ही यह भी सच है कि हर एक पुरुष यही चाहता है कि उसकी स्त्री उसकी नजरों में अधिक आकर्षक दिखाई पड़े। वह स्वयं स्त्री को आकर्पक बनाने का प्रयत्न भी करता है। मैं ऐसी अनेक स्त्रियो को जानती हूँ, जो आकर्षक न होने के ही कारण अपने पति की ऑखो से बहुत नीचे गिरी हुई हैं। सुनो एक स्त्री की करुण कहानी। वह अपने हृदय की पीड़ा को अपनी ऑखो में उडेलती हुई कहती है—मैं सादगी को पसन्द करने वाली एक दुखी अबला हूँ। मै उस कला में भी अधिक अनभिज्ञ हूँ जिससे स्त्रियो में अधिक आकर्षण पैदा होता है और जो पुरुषो के मन को अधिक दृढ़ता के साथ बॉध रखने में समर्थ होती है। विवाह के पूर्व यदि मै जानती कि पुरुष नारी के नारीत्त्व पर ध्यान न देकर उसके शरीर में केवल आकर्षण खोजते हैं, तो मैं भी अपने पति के मनोरंजन के लिये उस कला को सीखने का प्रयत्न करती। मेरे वैवाहिक जीवन का अनुभव तो मुझे यह बताता है कि विवाह करने के पूर्व हर एक नारी को इस कला में अधिक से अधिक प्रवीणता अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिये। क्योकि यदि नारी पुरुष की दृष्टि में आकर्षक और सुन्दर न हुई तो वह अपनी मानवता का परित्याग करके उसके जीवन के साथ अत्याचार कर सकता है—उसी प्रकार अत्याचार कर सकता है, जैसा आज मेरे जीवन के साथ किया जा रहा है। आकर्षक और अधिक सुन्दर न होने ही के कारण तो आज मै अपने पति की ऑखो मे उपेक्षित हूँ। जब मै उनसे इस उपेक्षा का कारण पूछती हूँ तब वे कहते हैं कि मेरी आँखों के लिये तुम्हारे शरीर में है क्या, जो मै तुम्हारा सम्मान करूँ।' इसी प्रकार न

जाने कितनी स्त्रियाँ आकर्षक न होने ही के कारण उपेक्षित जीवन बिता रही हैं। जब पुरुष स्त्रियो के शरीर में आकर्षण खोजते हैं, तब स्त्रियाँ दासता के कारण क्यो न पुरुषो को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें और उस प्रयत्न की संपूर्ति के लिये क्यो न तरह तरह के गहने और कपड़े पहनें? जब पुरुषो ने स्वयं उनमें शृङ्गार की अभिरुचि पैदा की, तब आज उनपर फैशनेबुल बनने का दोष कैसा? स्त्रियाँ अपनी युग-युगान्तर की दास-प्रवृत्ति के कारण फैशनेबुल इसीलिये बनती हैं कि वे पुरुषो के मनोरंजन की अधिक से अधिक उपयुक्त सामग्री बन सकें, उनकी आँखो को अधिक से अधिक ठंडक प्रदान कर सके।

यह स्त्रियो की एक बहुत बडी परवशता है सरला! बेचारी स्त्री अपना शृंगार भी अपने मन का नहीं कर सकती। उसे अपने शृंगार मे भी अपने पति का ध्यान रखना पड़ता है। वह जब प्रसाधन के लिये बैठती है, तब प्रसाधन की एक-एक वस्तु में उसे अपने पति की मूर्ति दिखाई देती है। वह वही गहने पहनती है, जो उसके पति को पसन्द होता है और वह वही साड़ियाँ पहनती है, जो उसका पति अपनी रुचि के अनुसार उसे लाकर देता है। साड़ियो के रङ्ग इत्यादि में भी पति की रुचि की ही प्रधानता होती है। पति यह सब इसलिये करता है कि उसकी रुचि के अनुसार शृंगार करके उसकी स्त्री जब उसके सामने आती है, तब उससे उसका अधिक मनोरंजन होता है, उसके प्राणो में अधिक गर्मी दौड़ती है। संसार के समस्त पुरुष नारी को इसी रूप में देखते हैं। युरोप, अमेरिका और जर्मनी इत्यादि देशो की स्त्रियो ने अपनी जागरूकता का परिचय देकर उक्त देशो के पुरुषो की इस भावना को कुछ अंशो में परिवर्तित कर दिया

है, पर हमारे समाज और देश में तो नारी केवल मन-बहलाव को चीज़ समझी जाती है और समझी जाती है मन-बहलाव की सभी चीज़ों में सबसे अधिक मूल्यवान। यही कारण है कि हमारे देश और समाज मे नारियो का अधिक अपहरण होता है और यही कारण है कि हमारे देश और समाज में स्त्रियाँ पुरुषो के द्वारा अधिक घूरी जाती हैं। हमारे देश और समाज के लिये यह सबसे अधिक कलंक की बात है सरला! दूसरे देशो में जहाँ स्त्रियाँ दुकानो पर बैठती और कल कारखानो मे मित्रो की भाँति पुरुषो के साथ काम करती हैं, वहाँ हमारे देश की स्त्रियाँ बाहर भी नहीं निकलतीं। और जब बाहर निकलतीं हैं तब पुरुषो की आँखे उन्हे घेर लेती हैं, उनपर चोट करती हैं!!

तुम्हारी बहन
मोहिनी
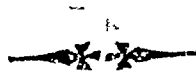
यदि मैं अविवाहित होता !

बनारस

६—४—४१

प्रिय रमेश !

जब हृदय पीड़ाओं का संसार बना हुआ हो और जब बादलो की भाँति उमड़ रहे हो अन्तर्द्वन्द, तब मनुष्य किसके पास जाने की कामना करता है ? उसके, जो उसके भीतर की व्यथाओ को देख सके और देखकर निकाल सके अपनी आँखो से सहानुभूति का आँसू, पर वह है ऐसा कौन इस संसार में रमेश ! संसार तो मनुष्यो को लेकर अपनी धारा में बहता जा रहा है। एक क्षण के लिये भी कभी उसकी प्रगति नहीं रुकती। भले ही उसके किनारे पर लाखो-करोड़ो व्यक्ति अपनी अपनी व्यथा का चित्र लेकर खड़े हो, भले ही भूख की ज्वाला से आकुल करोड़ो मानव संसार को अपना पेट दिखा दिखाकर उसे बाजे की भाँति बजाते हो, पर संसार अपनी राह चला जाता है, चारो ओर से अपनी आँखो को सिमेटे हुये आगे बढ़ा चला जाता है। जब संसार की आँखो में ही पीड़ितो की पीड़ाओं का चित्र शूल की भाँति गड़ता है, तब संसार की धारा में बहने वाले मनुष्यो की बात ही क्या ? आखिर मनुष्य है क्या ? संसार धारा की एक तरङ्ग ही तो। जब धारा ही नहीं रुकती, तब फिर तरङ्ग कैसे रुक सकती है ? फिर क्या रमेश, इस संसार मे पीड़ितो की पीड़ा का चित्र देखने वाला कोई नहीं, कोई हो,

या न हो, पर मैं तो रमेश, तुम्हारे सामने अपने जीवन-पीडा के चित्रो को रख रहा हूँ। पीड़ा के इन चित्रो की जिस अन्तर लोक में सृष्टि हुई है, तुम उसमें विहार करने वाले मेरे जीवन-सखा हो। मै जानता हूँ, कि तुम भी संसार की धारा मे बहने वाले मानव के रूप मे उसकी एक तरङ्ग हो, किन्तु उसके साथ ही मै यह भी जानता हूँ, कि जब तुम मुझे अपने व्यथा-चित्रो के साथ संसार के तट पर खड़ा हुआ देखोगे, तब तुम अवश्य अपनी उस बेगवती धारा को भी छोड़कर तट की ओर दौड पड़ोगे, और मेरे सभी व्यथा-चित्रो को अपने हाथ मे लेकर उन्हे ध्यान से देखोगे। केवल देखोगे ही नहीं, उन पर अपनी सहानुभूति के आँसू गिराकर उनके सूने पन को भी भर दोगे, सजीवता से गुञ्जित कर दोगे!

तुम पूछोगे रमेश, कि आज मैं इतना पीड़ित और निरुत्साहित क्यो हूँ? क्यो मै संसार की परिस्थितियो से योद्धा की भाँति संघर्ष करने वाले अपने मन को पीड़ा का संसार बना कर उसे किसी को दिखाने के लिये इतना व्यग्र हो रहा हूँ? मै तुमसे पूछता हूँ रमेश, दाने की खोज में निकले हुये पंछी का आवास यदि किसी ने उसके आने के पूर्व ही उजाड़ दिया हो तो वह क्या करे? यही न, वह आकाश मे भ्रमित की भाँति उड़-उड़ कर लोगो को अपनी पीड़ा के गीत सुनायेगा। ठीक मेरी भी दशा उसी पंछी की सी है रमेश! मै भी विवाह के द्वारा एक घोसला बना कर चारे की खोज में यात्रा मे निकला था, पर आज जब संध्या होते होते ठीक उसी पंछी की भाँति यात्रा से लौट कर आया हूँ, तब देखता हूँ, वह उजड़ा हुआ है। मै अब थका-माँदा कहाँ जाऊँ रमेश! किसे दिखाऊँ अपने अन्तर में बनते हुये चित्रो को। अपने जीवन को इस प्रकार

पीड़ाओ और निराशाओ से घिरा हुआ देख कर यदि मै यह कहूँ कि मैने विवाह न किया होता तो आश्चर्य की बात क्या ? विवाह ही ने मुझे घोसला बनाने के लिए विवश किया और विवाह ही आज मुझे चलने के लिये विवश कर रहा है व्यथा के इस मार्ग पर ! आज का मेरा विवश जीवन ! इसे देखते हुये जब मै अपने पूर्व के जीवन पर ऑखे फेकता हूॅ, तब अन्तर के कोने कोने से एक चीत्कार सी निकल पड़ती है। कितनी उमंगे थी उस जीवन मे, कितना पुरुषार्थ था उस मन में। ग्रन्थियो से बॅधा हुआ शरीर का एक-एक रग, एक-एक पुट्ठा शक्ति की घोषणा कर रहा था, पर आज उनमे न वह साहस है, न पुरुषार्थ ! मन साहस और पुरुषार्थ दोनो को ही खोकर भिखारी बन गया है। मै अपने मन के दोनो चित्रो को जब देखता हूॅ रमेश, तब अनायास ही मेरे अन्तर से यह आवाज निकल पड़ती है कि क्या पुरुष के मन को भिखारी बनाने के लिये ही विवाह का अभिनय किया जाता है ? पर नही रमेश, विवाह का आदर्श तो बहुत ऊॅचा है, बहुत ही श्लाघ्य है। विवाह पुरुष और स्त्री दोनो के मन को अधिक संयमशील बनाता है, अधिक बलवान। विवाह ही के द्वारा तो पुरुष उस नारी को प्राप्त करता है, जो चारो ओर से उसके जीवन में लिपटी रहने पर भी उसके लिये जड का काम देती है। फिर तुम यह पूछ सकते हो रमेश, कि मेरे मन की व्यथा का कारण क्या ? जब विवाह का आदर्श श्लाघ्य और उच्च है, तब वह क्यो मेरे हृदय में कॉटे की भॉति चुभ कर पीड़ा उत्पन्न कर रहा है ? इस लिये रमेश, कि विवाह के द्वारा पुरुष को जिस शक्ति सरीखी नारी को प्राप्त करना चाहिये, उसे मैंने नही पाया। मैने ही नही रमेश, आज जब मै समाज की ओर दृष्टि

पात करता हूँ, तब समाज के अनेक पुरुषों को इसी अभाव की पीड़ा से छटपटाता हुआ देखता हूँ। आज यह पीड़ा एक की नहीं रमेश, धीरे-धीरे सारे पुरुष समाज की बनती जा रही है। पुरुषो की इस सर्वव्यापी पीड़ा को देख कर कभी कभी मै यह सोच उठता हूँ, कि आज की नारी में नारीत्व नही ?

क्या यही वह नारी थी रमेश, जो अपने पुरुष के साथ साथ काँटो से भरे हुये संसार के मार्ग पर चलती थी ? क्या यही वह नारी थी, जो चारे की खोज मे निकले हुये अपने पुरुष-पंछी के सुख के लिये अपने घोसले में तिनके जोडती थी, और क्या यही वह नारी थी, जो प्रेम और शान्ति की साधिका की भाँति अपने दाम्पत्य-जीवन के गृह मे ईंटें जोड़ जोड़ कर उसे मजबूत बनाती थी ? ऐसी नारियो की जीवन-कहानियाँ तो अब केवल पुस्तको के पन्नो में पढ़ने को मिलती हैं रमेश ! आज की नारी को देख कर तो यह विश्वास भी नही होता, कि कभी ऐसी स्त्रियाँ समाज और संसार की गोद मे रही होगी। कितना अन्तर है आज और पूर्व की नारियो मे ! पूर्व की नारी जहाँ दाम्पत्य-जीवन के घोसले को बनाती थी, वहाँ आज की नारी अपने हाथो से ही उसमे आग लगाती हैं। पूर्व की नारी जहाँ अपने दाम्पत्य-जीवन के निर्माण की वेदिका पर अपनी इच्छाओ का भी उत्सर्ग कर देती थी, वहाँ आज की नारी दाम्पत्य-जीवन को उजड़ता हुआ देख कर प्रकट करती है अपने हृदय का हर्ष, और पूर्व की नारी जहाँ जीवनमार्ग पर पुरुष के साथ-साथ चलकर उसके हृदय मे आशा, शक्ति और साहस का संचार करती थी, वहाँ आज की नारी शिला की भाँति उसके मार्ग मे बिछ कर रोक लेती है उसका रास्ता !

स्त्रियाँ कह सकती हैं रमेश, कि जब वे स्वयं वन्दिनी का जीवन बिता रही हैं, तब वे कैसे कर सकती हैं पुरुष के हृदय मे साहस और शक्ति का संचार ? जब वे स्वयं निष्प्राणों की भाँति 'प्राण' के लिए अपना अञ्चल पसार रही हैं, तब वे कैसे दौड़ा सकती हैं पुरुषो की रगो मे जीवन और वे कैसे कर सकती हैं जीवन-क्षेत्र मे पुरुषो की सहायता ? मै ऐसी स्त्रियो से पूछता हूँ रमेश, कहाँ कर रही हैं वे स्त्रियाँ जीवन-क्षेत्र मे अपने पतियो की सहायता, जिन्होने समाज के रूढ़ि-बन्धनो को तोड़ कर अनेक अंशो में अपने को मुक्त कर लिया है ? कहाँ जोड़ रही हैं वे दाम्पत्य-जीवन मे तिनके और कहाँ बना रही हैं वे उसे बलवान ! मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूँ रमेश, जो दासता के बन्धन से मुक्त होने पर भी दाम्पत्य जीवन के निर्माण मे अपनी कोई अभिरुचि नही प्रगट करती ! वास्तव मे बात तो यह है कि आज की नारी दाम्पत्य-जीवन को ही अपने जीवन का बन्धन समझती है और इसीलिये वह उसमे आग लगाने के लिये सर्वदा उद्यत सी रहती है।

यह असत्य नही रमेश, सत्य है। यदि तुम हमारे वैवाहिक जीवन की ओर झाँको तो तुम्हें इसकी सत्यता साफ-साफ दृष्टिगोचर होने लगेगी। आज की नारी यह समझती है कि दाम्पत्य-जीवन का निर्माण केवल पुरुष के लिये होता है, स्त्री के लिये नही। यही कारण है कि आज की नारी अपने को विवाह के बन्धन में फँसाना नही चाहती। अविवाहित स्त्रियो की तो कोई बात नही रमेश, किन्तु जब विवाहित नारी भी ऐसा ही सोचने लगती है, तब पुरुष का जीवन हो जाता है अधिक संकटापन्न, अधिक दयनीय। दाम्पत्य-जीवन को अपने लिये भार-स्वरूप समझने के

कारण नारी उसमे योग नहीं देती, पुरुष को अकेले ही उसके उत्तर-दायित्त्व को अपने कन्धो पर रखकर चलना होता है। नारी यदि दाम्पत्य-जीवन के संचालन में योग न देकर केवल शान्त हो जाय तो भी जीवन में कुछ वाधा उपस्थित न हो, पर नारी ऐसा नहीं करती रमेश ! नारी का यह प्रकृत स्वभाव है कि वह अपने लिये जिसे बुरा और अहितकर समझती है उसके विरुद्ध संघर्ष करने के लिये भी उद्यत हो जाती है। नारी अपने इस प्रकृत स्वभाव को इस प्रकार धीरे-धीरे सावधानी के साथ गुप्त रूप से प्रगट करती रहती है कि पुरुष का मानस उससे अधिक मथ सा उठता है। नारी पुरुष को मानसिक चोट पहुँचाने में अधिक प्रवीण होती है। उसका काम बहुत ही धीरे-धीरे और गुप्तरूप से होता है। वह एक चींटी सी काटकर उसके शरीर में शत-शत बिच्छुओ के दंश मारने की सी पीड़ा उत्पन्न कर देती है। पुरुष के अन्तर का कोना-कोना उस पीड़ा से मथ उठता है। दाम्पत्य-जीवन को भार-स्वरूप समझने वाली विवाहित नारियाँ आज पुरुषो के हृदय में ऐसी ही पीड़ा उत्पन्न कर रहीहैं। न जाने कितने पुरुष अपनी इस आन्तरिक पीड़ा से विक्षिप्त हैं। न जाने कितने महत्त्वा-कांक्षी युवक इस राह पर आकर बेड़ियो से जकड़ उठे और फिर बढ़ न सके एक कदम आगे। उनकी सारी इच्छाये, उनकी सारी महत्त्वाकाक्षाये आज के वैवाहिक जीवन की आग में जल कर भस्म हो गई। उन्होने कभी सोचा होगा, विवाह के पश्चात् जीवनसहचरी को साथ मे लेकर उन्नति की ओर अग्रसर होगे, पर आज तो वे सोच रहे हैं, मैने व्यर्थ ही बनाया किसीको अपने जीवन का साथी। जीवन-मार्ग पर जीवन-सहचरी का पग पग पर विरोध! इसके अतिरिक्त वे अपने मनमे सोच ही क्या सकते हैं?

तुम पूछ सकते हो रमेश, आखिर क्यो आज की नारी ऐसा करती है, क्यो ? जब वह स्वयं भी दाम्पत्य-जीवन के गृह में सुख और सन्तोष की साँसें लेती है, तब वह क्यो उसके छप्पर में अपने हाथो से आग लगाने के लिये उद्यत है, क्यो उसका अमङ्गल चाहती है ? वास्तव में बात तो यह है रमेश, कि आज की नारी दाम्पत्य जीवन के गृह में सुख और सन्तोष का कभी अनुभव करती ही नहीं। वह दाम्पत्य-जीवन को दासता समझती है, पराधीनता। पश्चिम के उच्छृंखल विचारो ने उसके जीवन-वृक्ष को झकझोर दिया है और वह अपने वास्तविक पथ से बहक कर बहुत दूर चली गई है। पश्चिम ने जहाँ हमें अन्यान्य-क्षेत्रो में जीवन की वास्तविकता से बहुत पीछे हटाया है, वहाँ उसने हमारे दाम्पत्य-जीवन को भी अधिक दूषित बना दिया है। अँग्रेज़ी शिक्षा ने स्त्रियों की रग रग मे एक ज़हर सा घोल दिया है। उसी ज़हर का तो यह प्रभाव है रमेश, कि दाम्पत्य-जीवन नारी को अधिक भारी ज्ञात होता है, अधिक विपद्जनक। नारी पहले तो दाम्पत्य-जीवन में फँसना ही नहीं चाहती और जब फँसती है, तब उठाती है गृह-जीवन मे समानता की आवाज। मैंने ऐसी अनेक स्त्रियो से पूछा रमेश, कि आखिर वे गृह-जीवन मे चाहती हैं कौन सा समानता का पद, पर कोई ठीक ठीक उत्तर न दे सका। मैंने उनके हृदय को टटोल कर देखा, उत्तर देने के लिये उनके पास कुछ था नहीं। तुम्हीं हमारे देश के गृह जीवन पर दृष्टि डालकर देखो रमेश! गृह जीवन में स्त्रियों के हाथ मे क्या नहीं रहता ? सभी कुछ तो। बेचारा पुरुष धूप में अपने शरीर का खून सुखाने के बाद भी अपने पास कुछ नहीं रखता। वह जो कुछ कमाता है, नारी को लाकर सौप देता है। कदाचित् ही समाज में

ऐसे थोड़े से पुरुष हो, जो नारी को उसके इस अधिकार से वंचित रखते हो। अधिकाश घरो में नारी का ही राज्य रहता है। नारी जो चाहती है, वह करती है। घर की सम्पत्ति पर ही नही रमेश, वह बहुत अंशो मे पुरुष के मन पर भी राज्य करती है। एक प्रकार से पुरुष उसके हाथो में बिका सा रहता है। फिर गृह जीवन में यह समानता की आवाज़ कैसी? वाह्य जगत में विचरण करने वाला पुरुष तो प्रति क्षण इस बात के लिये इच्छुक रहता है, कि उसकी जीवन—संगिनी उसके अन्तःपुर को रानी की भाँति सँभाल ले, पर मै तुम से पूछता हूँ रमेश, कि आज की नारी क्या जीवन-संगिनी के रूप में ऐसा करती है? भले ही घर के नौकरो पर वह अपनी शासन-सत्ता प्रगट कर देती हो, पर घर के कार्यों के संचालन में वह प्रायः अनुत्तीर्ण ही रहती है। और तो जाने दो रमेश, वह अपने लिये भोजन भी तो नहीं बना सकती, और अपने बच्चो का यथोचित रूप से पालन-पोषण भी नहीं कर सकती। ऐसी बात नहीं रमेश, कि इन विषयो में नारी अनभिज्ञ होती है, असल मे बात तो यह है, कि नारी अपनी प्रकृत प्रवृत्ति के कारण अपने जीवन के समस्त कार्यो को दूसरो पर छोड़कर सभी चिन्ताओ और कर्त्तव्यो से मुक्त हो जाना चाहती है। जीवन को सानन्द आगे बढ़ाने के लिये जिस प्रकार उसे एक बलिष्ठ और स्वस्थ पति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार वह अपने जीवन के समस्त कार्यों का भार भी दूसरो के ऊपर छोड़ देना चाहती है। यह उसके पति की इच्छा, चाहे वह स्वयं अपने हाथो से उन कार्यों को करे, और चाहे नौकरो से कराये। स्त्रियो की इस प्रकृति का चित्रण मिस मार्गरी लारेन्स नामक एक अॅग्रेज़ महिला ने बड़े नपे-तुले शब्दों में किया है। देखिये:—स्त्रियाॅ प्रायः आलसी होती हैं। यद्यपि कुछ स्त्रियाॅ

कल कारखानो में काम करती हैं, फिर भी स्त्रियो की अधिक संख्या विवाह ही करती है। यह इस लिये कि इन्हे कोई काम न करना पड़े और कोई पुरुष उनका भरण पोषण करता रहे। विवाह कर लेने पर वे पत्नी का काम भी पूर्ण रूप से नही करतीं। उनको काम करना पसन्द ही नहीं। वे चाहती हैं कि जहाँ तक हो सके, हमें काम न करना पड़े। शरीर के आलसी हो जाने से उनका मन भी आलसी हो जाता है, जिसका परिणाम मानसिक मूर्खता होता है!"

सचमुच रमेश, नारी अपने जीवन के सभी कार्यों को पुरुष के ऊपर छोड़ कर निश्चिन्त हो जाना चाहती है। वह जीवन में सुख और शान्ति का उपभोग करने के अतिरिक्त कुछ करना चाहती ही नहीं! वह चाहती है उसका पुरुष ही उसके जीवन के सभी कार्यों की संपूर्ति कर दिया करे। पुरुष नारी के जीवन के सभी कार्यों की संपूर्ति तो करता ही है रमेश, पर नारी तो उसके लिये इतना भी नहीं कर सकती, कि वह दो रोटियाँ बना कर उसे खिला दिया करे। यदि कार्यों से थका-माँदा पुरुष कभी उसके सामने इसकी माँग पेश करता है, तो वह उसमे दासता और पराधीनता का अनुभव करने लगती है। ठीक यही तो है हमारा वह दाम्पत्य-जीवन रमेश, जिसकी पीड़ा ने आज हमारे जीवन को अधिक व्याकुल बना दिया है। विवाह के पूर्व मैं यह समझता था, कि पढी लिखी नारी से विवाह करके जीवन अधिक सुखी होगा, पर आज अनुभव में आ रहा है बिलकुल उसका उलटा रमेश! विवाह के चार-पाँच वर्ष बीत गये, पर कदाचित् ही जीवन में कभी सुख और सन्तोष का अनुभव हुआ हो। दिन भर आफिस में सरकारी फाइलो में आँखे दौडाने के

पश्चात् सन्ध्या समय जब घर लौट कर आता हूँ तो घर उजड़ा हुआ सा दिखाई देता है। 'नारी' नाम की घर में शक्ति अवश्य है, पर मस्तिष्क अधिक जागरूक होने के कारण वह अपने को 'प्रियतमा' और 'पत्नी' के स्थान पर पुरुष का मित्र समझती है। मित्र भी कैसा, जो सुख में तो हिस्सा बँटाये, और दुख में बात तक न पूछे! मै तो आकुल हो उठा हूँ अपने इस दाम्पत्य-जीवन से रमेश! मन ही मन सोचता हूँ, क्यो मैने विवाह किया? क्यो मैने इस क्षेत्र में आगे पैर बढ़ाया? तुम अपने मनमें यह सोचोगे रमेश, कि मै विवाह का आनन्द लेकर तुम्हे विवाह करने से मना कर रहा हूँ, पर ऐसी बात नहीं भाई! तुम विवाह करो, और विवाह के द्वारा एक ऐसी नारी को जीवन-संगिनी बनाओ, जो तुम्हारे आश्रय की छाया में रहने पर भी तुम्हारे जीवन के लिये जड़ का काम दे, पर प्रश्न यह उठता है रमेश, कि ऐसी नारी आज के समाज में कही है भी। फिर क्या विवाह केवल इस लिये किया जाय, कि नारी के भरण-पोषण में पुरुष अपने को खपा दे, अपनी समस्त उन्नत आकांक्षाओं की वलि चढ़ा दे। आज इतना ही रमेश, आगे फिर और लिखूँगा?

तुम्हारा मित्र

फणिन्द्र
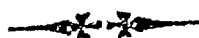
विवाह, क्या नारी के भरण-पोषण के लिये ?

बनारस

८—४—४१

प्रिय रमेश !

तुम अभी अविवाहित हो ! तुम इस बात को नहीं जानते कि विवाह किस प्रकार पुरुष के पुरुषार्थ को अपनी वेड़ियो मे कस कर जकड़ लेता है। मै यह नही कहता रमेश कि विवाह के सिद्धान्तो और आदर्शों की नीव की रचना ही इस प्रकार की है, मेरे कहने का तात्पर्य तो केवल यह है कि विवाह के द्वारा पुरुष को जो नारी प्राप्त होती है, वह बडे ही कौशल के साथ अपने जीवन की समस्त आवश्यकताओ को पुरुप के कन्धे पर रख-कर निश्चिन्त सी हो जाती है। पुरुष उस भार से इतना दब जाता है, इतना चिन्तित हो उठता है कि उसके भीतर की सारी शक्तियाँ मर सी जाती हैं। वह उस भार और उन चिन्ताओ के अतिरिक्त अपने जीवन मे कुछ देखता ही नही। आगे बढ़ने की उसकी समस्त आभिलाषाये चिन्ताओ के चक्र में पिस सी उठती हैं। हमारे समाज मे साधारणतः यह प्रथा प्रचलित भी है कि जिस युवक को घर मे बाँधना होता है, उसका विवाह कर दिया जाता है। सचमुच रमेश, नारी पुरुप के लिये बन्धन ही का काम देती है। विवाहित पुरुष का हरएक काम उसकी स्त्री की इच्छानुसार होता है। हमारे

देश में तो नहीं, पर युरोप इत्यादि देशो में पुरुष अपनी जीवन-संगिनी की इच्छानुसार ही खाना खाते, कपड़ा पहनते, बाल कटवाते और मूँछे भी रखवाते हैं। उनके जीवन का सारा चक्र ही नारी-यंत्र की शक्ति से घूमता है। यदि वे उस यंत्र की गति में वाधा उपस्थित करते हैं, तो इसके उत्तर में झट आ जाता है उनके सामने नारी का त्याग पत्र। प्रायः समाचार-पत्रो में ऐसी घटनाये छपती ही रहती हैं कि युरोप की अमुक स्त्री ने केवल इसलिये अपने पति को तलाक़ दे दिया कि वह उसकी इच्छानुसार टाई नहीं बाँधता था। अभी थोड़े दिन हुए अमेरिका की एक स्त्री ने केवल मूँछों के कारण अपने पति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। हमारे देश के घरो में भी इस प्रकार के दृश्यो की कमी नहीं है। हमारे देश की स्त्रियो का जीवन युरोप की स्त्रियो के जीवन से अधिक भिन्न होने के कारण वे सम्बन्ध-विच्छेद की बात तो नही सोचतीं, किन्तु फिर भी वे अनेक प्रकार से पुरुषो के मन को अपनी इच्छाओ की डोरी में कसकर बाँधने का प्रयत्न करती ही हैं। एक वकील साहब का कथन है कि वे जब अपनी स्त्री की इच्छानुसार कोई काम नहीं करते, तब वह चारपाई पर पडकर सिसकियाँ भरने लगती है। उसकी सिसकियो के सामने वकील साहब को सब कुछ भूल जाना पड़ता है। एक मास्टर साहब की स्त्री अपनी इच्छायें पूरी न होने पर खाना बनाना ही छोड़ देती है। मास्टर साहब भूखे हैं या प्यासे, उन्हे स्कूल जाना है या नहीं, इसकी उसे चिन्ता नही रहती। जब-तक मास्टर साहब उसकी इच्छाओ के अनुसार कार्य नहीं करने लगते, तब तक उन्हे या तो बाजार में खाना पड़ता है, और या भूखा ही रहना पड़ता है। इसी प्रकार एक बैरिस्टर साहब की स्त्री अपनी इच्छाओं के

साँचे में बैरिस्टर साहब को ढालने के लिये घर में कलह का सूत्रपात करती है। बेचारे बैरिस्टर साहब उसके कलह से भयभीत होकर अपने जीवन के अधिकांश काम अपनी स्त्री से ही पूछ-पूछ कर किया करते हैं। यह तो मैंने तुम्हें उदाहरण की बातें बताईं रमेश, साधारणत: सभी स्त्रियाँ ऐसा ही करती हैं। पुरुष के मन को नचाने के लिये नारी के पास एक विचित्र शक्ति होती है। नारी सुन्दरी हो, या कुरूपवान, पर उसमे इस मोहक शक्ति का कुछ न कुछ अंश अवश्य होगा। सुन्दरी स्त्रियाँ इस सम्बन्ध में अधिक भाग्यशालिनी होती हैं। वे जितनी सरलता के साथ पुरुष के मन पर अपना राज्य स्थापित कर लेती हैं, कुरूप स्त्रियो को उतनी ही कठिनाई भी होती है। पुरुष को अपनी इच्छाओं में कसकर बाँध रखने के लिये सबसे पहले नारी अपनी इसी मोहक-शक्ति का उपयोग करती है। जब वह इसमें असफल होती है, तब अन्यान्य उपायों से काम लेती है। युरोप का तलाक भी इसी प्रकार का एक उपाय है। पुरुष को भयभीत करने के लिये ही युरोपीय इत्यादि देशों में तलाक की प्रथा प्रचलित की गई है। हमारे देश की जागरूक कही जानेवाली स्त्रियो ने भी अब समाज के सामने तलाक की माँग उपस्थित की है। जो हो रमेश, नारी पुरुष के लिये एक लोह-बेड़ी का सा ही काम करती है। संसार के अनेक महापुरुषों तक ने इस लोह-बेड़ी की यंत्रणाओं से आकुल होकर अपने जीवन का सर्वान्त कर लिया है।

विचित्र प्रकृति होती है नारी की रमेश! वह पुरुष का सर्वस्व लेकर उसे कुछ भी देना नहीं चाहती। यदि देती भी है, तो उसे बड़ी निर्ममता से छीन भी लेती है। नारी पुरुष से जितना शीघ्र असन्तुष्ट होती है, उतना पुरुष नारी से नहीं। नारी पुरुष पर बड़े ही दर्प के साथ अपना अधिकार प्रगट करती

है। वह चाहती है पुरुष के एक-एक कार्य पर उसका अधिकार रहे, उसकी इच्छाओं का राज्य रहे। यदि पुरुष उसकी इच्छाओ के अनुसार चलता है, तो निसन्देह वह उसके हृदय का अधिकारी होता है, अन्यथा स्त्री मन-ही मन कुपित होकर उसके हृदय को मसल डालती है, इस प्रकार मसल डालती है, कि फिर उसके विकसित होने की आशा ही नहीं रहती। विवाह के द्वारा स्त्री–पुरुष में इस प्रकार का जो आदान–प्रदान होता है, इसमें सन्देह नही, कि भारतीय नारी का प्रदान संसार की समस्त नारियो से अधिक मूल्यवान है, पर साधारणत: नारी देना कुछ नहीं चाहती। वह विवाह को अपनी एक ऐसी मुहर समझती है, जो पुरुष नामक सम्पत्ति पर लगा दी जाती है। संसार के अन्यान्य देशो की स्त्रियाँ सम्पत्ति ही की तरह पुरुषो का उपयोग भी करती हैं। जब तक पुरुष में उनकी इच्छाओ की सम्पूर्ति की शक्ति रहती है, वे उसके साथ रहती हैं, अन्यथा उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेती हैं। वे घर बसाना और दाम्पत्य जीवन का निर्माण करना जानती ही नहीं। वे जानती हैं, पुरुषों के सहारे आनन्दमय जीवन व्यतीत करना। इसी आनन्दमय जीवन के लिये अब युरोप की अधिकाश स्त्रियाँ अविवाहित जीवन बिताने का संकल्प भी करने लगी हैं। अमेरिका के एक बहुत बड़े लेखक ने अपने देश की स्त्री-पुरुष समस्या पर प्रकाश डालते हुये लिखा है—मै अपने देश के ऐसे अनेक व्यक्तियो से मिल चुका हूँ, जिनकी स्त्रियो ने तलाक देकर उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। पहले मै तलाक को जीवन में घटने वाली अन्यान्य घटनाओ ही के समान एक आकस्मिक घटना समझता था, किन्तु जब मैने देखा, कि न्यायालय मे तलाक का प्रार्थना-पत्र देनेवालों में पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की संख्या बहुत अधिक है, तब मै यह जानने

के लिये अधिक व्यग्र हो उठा, कि आखिर तलाक स्त्रियॉ ही क्यो देती हैं, पुरुष क्यो नही देते ? तलाक देनेवाली अधिकाश स्त्रियो के पतियो से मिलने और उनके दाम्पत्य जीवन की कहानियॉ सुनने के पश्चात् मै अब इस परिणाम पर पहुॅचा हूॅ, कि नारी प्रकृति की अधिक दुर्बल और नवीनता की अधिक प्रिय होती है। वह एक पुरुष के साथ दाम्पत्य जीवन की जंजीर में बॅधने की अपेक्षा अपने जीवन के लिये पुरुषो का परिवर्तन अधिक अच्छा समझती है। वह नही चाहती, कि किसी पुरुष के साथ उसका जीवन विगचि के मार्ग पर चले। वह विवाह के द्वारा पुरुष को इस लिये प्राप्त करती है, कि उसका जीवन हर एक प्रकार से सुखी रहे। जब तक पुरुष उसकी आकांक्षाओ की पूर्ति करता है, वह उसके साथ रहती है, अन्यथा सूत के कच्चे धागे की तरह सम्बन्ध तोड़कर उससे अलग हो जाती है।' सचमुच रमेश, नारी की प्रकृति ऐसी ही होती है। अगर तुम संसार के पुरुषो के दाम्पत्य-जीवन पर दृष्टि डालो तो तुम्हें इसकी सत्यता साफ साफ दृष्टिगोचर होने लगेगी। दाम्पत्य जीवन में स्त्री-पुरुषों के बीच उठने वाली कलह की चिनगारियॉ प्रायः स्त्रियो की ओर से ही उठती है। मै यह नहीं कहता, कि पुरुषो की ओर से कलह की आग भड़कती ही नहीं, पर मैं यह अवश्य कहता हूॅ, कि स्त्रियो का इसमे अधिक भाग होता है। सांसारिक कार्यो मे अधिक व्यस्त रहने के कारण पुरुषो को तो इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नही मिलता। इसके अतिरिक्त कदाचित् ही ऐसा कोई पुरुष हो, जो यह चाहता हो, कि उसके व्यस्त जीवन में किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न हो। अमर कलाकार टालस्टाय के न चाहने पर भी उसकी स्त्री सदैव उसके जीवन मे बिच्छू की भॉति डंक मारा करती थी। फ्रान्स का सम्राट

तृतीय नैपोलियन भी आजीवन इसी पीड़ा से कराहता रहा । टालस्टाय और नैपोलियन ही क्यो, आज सारा का सारा युरोपीय समाज भी तो इसी पीड़ा से चीत्कार कर रहा है । अन्तः पुरो से निकलने वाले तलाक के त्याग पत्र और छूटने वाली पिस्तौलो की गोलियॉ क्या हैं ? क्या यही है युरोपीय समाज के दाम्पत्य जीवन का महत्त्व ? क्या यही है दाम्पत्य जीवन में बॅधने वाले स्त्री-पुरुषो का हार्दिक प्रेम ?

प्रेम और शान्ति का तो नाम तक नही है आज की नारी मे रमेश! मैं समझता हूँ, युरोप ने अपने जीवन को जलाने के लिये जहाँ अनेक प्रकार के कुत्सित कामो के द्वारा पाप की ज्वालाये बटोरी हैं, वहॉ उसने जगत की स्त्रियो को पथ भ्रष्ट बनाने का पाप भी अपने सिर पर धारण किया है । आज युरोप की स्त्रियॉ नारी स्वाधीनता के नाम पर जो आन्दोलन कर रही हैं, क्या उससे दाम्पत्य-जीवन दूषित नहीं होता जा रहा है ? क्या वह दाम्पत्य-जीवन में बॅधे हुये स्त्री-पुरुषो के जीवन को भस्म करने के लिये रुई और आग का सा काम नहीं कर रहा है ? चाहे तुम जिस देश पर दृष्टि डाल कर देख लो रमेश ! नारी स्वाधीनता के नाम पर तुम्हे अपने पथ से बहकी हुई दिखाई देगी । युरोप, अमेरिका और रूस इत्यादि देशो में कहॉ है दाम्पत्य-जीवन ? आज के कई सहस्र वर्ष पूर्व दाम्पत्य-जीवन के नाम पर मनुष्यों मे जो स्वेच्छाचार था, वही स्वेच्छाचार है आज युरोपीय देशों में । सभ्यता के आदिकाल में जिस प्रकार नारी द्वार-द्वार भटकती थी, उसी प्रकार भटक रही है आज वह युरोपीय देशो में । तुम्हें आश्चर्य होता होगा रमेश, पर जब युरोपीय नारियॉ एक के पश्चात् क्रमसे पचास-साठ पुरुषो से विवाह कर सकती हैं, तब फिर उनमें और सभ्यता के आदिकाल

की नारी के जीवन में अन्तर ही क्या रहा? सभ्यता के आदिकाल की नारी भी तो आखिर यही करती रही ! वह भी तो दाम्पत्य-जीवन को अपने लिये अभिशाप समझ कर एक के पश्चात् दूसरे पुरुष का परित्याग करती थी। युरोपीय समाज के लिये नारी की यह स्वेच्छाचारिता क्या कलंक की बात नहीं है रमेश ! युरोपीय समाज इसे 'सभ्यता' और सर्वोच्च 'संस्कृति' कह कर भले ही सन्तोष कर ले, पर आज इस स्वेच्छाचारिता का धुआँ उसके स्तर को फोड़ कर स्पष्टरूप से बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहा है। भले ही सुदूर देशो में रहने वाली स्त्रियाँ युरोपीय नारी समाज की चमक-दमक को देख कर उसे जीवन की वास्तविकता समझ लें, पर वास्तव में उसके भीतर कुछ भी नही है रमेश, कुछ भी नहीं। वह ठीक वैसा ही है, जैसा प्यासे मृग के लिये दूर से चमकते हुये बालू के कण। एक अंग्रेज लेखक ने अपने समाज की इस पीड़ा का बड़े ही जॅचे हुये शब्दो मे चित्रण किया है:—
'काश हमारे देश की स्त्रियाँ इतनी शिक्षित न होतीं ! इन शिक्षित स्त्रियो से तो जङ्गलो में रहने वाली वे अशिक्षित स्त्रियाँ अच्छी हैं, जिनके हृदय में अपने पतियो के लिये प्रेम, और बच्चो के लिये ममता होती है। भले ही ज्ञान-विज्ञान का आलोक उनके भीतर नहीं होता, पर वे अपने दाम्पत्य-जीवन को जिस प्रकार सॅवारती हैं, उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता, कि उनके नारीत्त्व के भीतर आलोक नहीं है। मैं आज जब अपने देश की स्त्रियो को अपने अपने पतियों से, ऐसे पतियो से जो आवश्यकता पड़ने पर उनकी मुसीबतो की आग में अपने शरीर का रक्त भी डाल चुके होगे, सम्बन्ध विच्छेद करते हुये देखता हूँ, तब अनायास ही मेरे अन्तर से यह आवाज निकल पड़ती है, कि क्या हमारे देश की स्त्रियों के हृदय में

मानवता नहीं, प्रेम नही, सहानुभूति नहीं ? फिर मानवता, प्रेम और सहानुभूति से विहीन इस समाज का जगत में क्या होगा, क्या होगा !'

यह है एक युरोपीय लेखक के शब्दो में युरोपीय नारी समाज का चित्र ! आश्चर्य है रमेश, हमारे देश की स्त्रियाँ बड़ी तेजी के साथ उसी की ओर दौड़ी जा रही हैं। स्त्रियो की इस प्रगति ने ही तो हमारे दाम्पत्य जीवन में भी आग लगा दी है। आज हमारे दाम्पत्य-जीवन की सम्पूर्ण कठिनाइयो केवल इसी लिये हैं। नारी गुलामी के कारण पश्चिम की ओर बहकी जा रही है। उसका रहन सहन, उसका आचार-विचार, उसका वेश-भूषा, सब कुछ बदलता जा रहा है। लोग इसे क्रान्ति का नाम दे रहे हैं, और कह रहे हैं, स्त्रियो की यह जागरूकता है, जागरूकता, पर क्या रमेश, क्रान्ति मनुष्य को पीछे भी ढकेल देती है? क्या जागरूकता उसे अन्धकार की ओर भी ले जाती है ? स्त्रियों की क्रान्ति, उनकी यह जागरूकता आज जीवन के साथ यही तो कर रही है। देखो न रमेश, स्त्री और पुरुष दोनो ही पीछे की ओर लौटे जा रहे हैं। नैतिकता और मानवता का यह सन्देश है, कि दो मनुष्य जब प्रतिज्ञा के साथ परस्पर प्रेम-आबद्ध हों, तब उन्हें आजीवन एक दूसरे की प्रेम-डोर मे बँधे रहना चाहिये, आपदाओ की झाड़ियो मे भी परस्पर मित्र बने रहना चाहिये, पर कहाँ है आज के स्त्री-पुरुषो मे वह भाव ! स्त्री अलग रहती है, पुरुष अलग। स्त्री पति की चिन्ता नहीं करती और पति पत्नी की। दोनो के हृदय में एक दूसरे के प्रति न प्रेम, न सहानुभूति और न ममता। दोनो अपने जीवन-क्षेत्र में इस प्रकार एक दूसरे से लड़ते हैं, जिस प्रकार भूखे पक्षी। पुरुष स्त्री का गला घोटता है, स्त्री पुरुष को विष देती है। पुरुष स्त्री पर पिस्तौल से

गोली छोड़ता है, स्त्री पुरुष के कमर में खञ्जर घुसेड़ती है। क्या इसी का नाम है जागरूकता, और क्या इसी का नाम है क्रान्ति रमेश? उक्त युरोपीय लेखक के शब्दो मे इस जागरूकता से अच्छा तो वह अन्धकार है, जिसमे स्त्री-पुरुष दोनो एक साथ मिल कर रहते हैं, प्रेम से जीवन व्यतीत करते हैं और करते हैं विवाह के आदर्श को चरितार्थ!

कहाँ है आज जागरूक कही जाने वाली पत्नी के हृदय में पति के प्रति प्रेम? कहाँ करती है वह उसके जीवन को सुखी बनाने की चेष्टा? वह पति को अपने हाथो से बनाकर भोजन भी तो नहीं करा सकती। पति ने भोजन किया है या नहीं, वह प्यासा है या नहीं, कहाँ रहती है उसे यह चिन्ता? यदि उसे चिन्ता रहती है, तो अपनी साडियो की, अपने गहनों को और अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति की। पति का कौन कहे, वह अपना काम भी तो अपने हाथो से नहीं कर सकती। उसका सारा काम नौकरों के हाथो से होता है। पति परिश्रम की भट्टी में जल-जल कर जो कुछ कमाता है, वह फैशन और नौकरो में स्वाहा हो जाता है। आवश्यकताओ और इच्छाओ की पूर्ति में कुछ बिलम्ब हुआ नहीं, कि पत्नी जी फन काढ़ कर खड़ी हो जाती हैं। यदि पति की आर्थिक अवस्था अच्छी हुई तो ज्यों-त्यों करके जीवन बीतता जाता है, अन्यथा हो जाता है घर कलह और विद्रोह का क्षेत्र। पत्नी को तो केवल सुख चाहिये, सुख! उसके जीवन-सुख में जब अभाव होता है, तब वह कुरेदने लगती है पति का हृदय। उठते, बैठते, खाते-पीते, प्रति क्षण वह अपने पति के हृदय को जलाती है। इस प्रकार जलाती है, कि पति जीवन से ऊब जाता है, आकुल हो जाता है। आज की नारी पुरुष के हृदय को केवल जलाना

जानती है। वह स्वयं तो पुरुष से सब कुछ चाहती है, किन्तु पुरुष को कुछ देना नहीं चाहती। यदि पुरुष उससे कुछ चाहता है, तो उसमें वह दासता का अनुभव करती है। मै पूछता हूँ रमेश, जब नारी किसी भी प्रकार से पुरुष के जीवन को सुखी नही बना सकती, तब फिर पुरुष नारी से विवाह क्यो करे? क्या इसलिये कि नारी का भरण-पोषण करने के लिये? पुरुष जब नारी का भरण-पोषण करता है, तब नारी को उसके जीवन-सुख की चिन्ता करनी ही चाहिये। पुरुष जब अपने दाम्पत्य-जीवन को बलवान बनाने के लिये बाहरी संसार में अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है, तब नारी को अन्त:पुर में उसके लिये शक्ति उत्पन्न करनी ही चाहिये, किन्तु आज की नारी अन्त:पुर में रहना ही नही चाहती रमेश! आज की नारी के लिये अन्त:पुर उतना मूल्यवान नही है, जितना सामाजिक और राजनैतिक जगत मूल्यवान है। आज की नारी चाहती तो यह है कि पुरुष उसके अन्त:पुर का भार भी अपने कन्धे पर उठाले। फिर मैं पूछता हूँ रमेश, पुरुष विवाह क्यो करे? क्या केवल इसलिये कि नारी का भरण-पोषण करने के लिये!

तुम्हारा मित्र

फणिन्द्र

दाम्पत्य-जीवन की पीड़ा

बनारस

१०—४—४१

प्रिय बन्धु !

मै तुम्हे बता चुका हूँ, कि मेरे जीवन में एक बहुत बड़ी वेदना है। मै दिन रात अपनी पीड़ा की उस आग में जलता रहता हूँ। घर, बाहर, सर्वत्र वह आग मेरे हृदय को जलाती रहती है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है, मानो मै जीवन की किसी अमूल्य सम्पत्ति को अपने हाथो से खो चुका हूँ। दूसरे शब्दो मे मेरे जीवन में ऐसी कोई अमूल्य वस्तु नही, जो जीवन को जीवन बॉटती है और देती है उसे अनमोल शान्ति। सचमुच रमेश, मेरे जीवन में एक अमूल्य वस्तु नहीं है। ऐसी अमूल्य वस्तु नहीं है, जो कदाचित् इस मानव जगत में शान्त और संयम शील जीवन बिताने के लिये सबसे अधिक आवश्यक समझी जाती है। वह वस्तु है रमेश, दाम्पत्य-जीवन का सुख। कितनी महत्ता है इस जीवन की संसार में! मैं तो जब इस जीवन की गुरुता पर विचार करता हूँ, तब सारी की सारी सृष्टि मुझे इसके केन्द्र पर नाचती हुई दिखाई देती है। आज संसार मे जो कुछ सुख, जो कुछ सयम, और जो कुछ शान्ति है, वह इसी का तो एक प्रकाश है। मनुष्य तो मनुष्य है, पशु और पक्षी भी सुख तथा संयमशील जीवन

व्यतीत करने के लिये दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बॅधते हैं। जानते हो रमेश, इस जीवन का आधार क्या है? प्रेम और विश्वास। प्रेम और विश्वास की ही नींव पर दाम्पत्य जीवन का सुन्दर महल खड़ा होता है। देखा है क्या तुमने किसी पक्षी के जोड़े को, जो परस्पर प्रेम के सूत्र मे आबद्ध होते हैं। दोनो साथ ही साथ उड़ते हैं, आकाश से नीचे उतर कर एक स्थान में बैठते हैं, और फिर अपने अपने चोच में पतली पतली लकड़ियॉ दबाकर उड़ पड़ते हैं—किसी दिशा की ओर। किसी पेड की डाल पर उतर कर फिर बनाते हैं चुन चुन कर घोसला और उसी घोसले में बिताते है अपना दाम्पत्य-जीवन। उन वाणी-विहीन जीवों मे हम मनुष्यो की भॉति दाम्पत्य-जीवन के लिये तरह-तरह की स्वर्णिम कल्पनाये नही होतीं, किन्तु वे अपने दाम्पत्य-जीवन को टिकाने के लिये करते हैं कितना सुन्दर प्रयास! काश, हम मनुष्य भी अपने दाम्पत्य-जीवन के लिये वैसा ही प्रयास कर सकते।

मैंने अभी तुम्हे बाताया भाई, दाम्पत्य-जीवन का सुन्दर महल प्रेम और विश्वास की नीव पर तैयार होता है। दूसरे शव्दो मे दाम्पत्य-जोवन प्रेम और विश्वास को छोडकर कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। दाम्पत्य-जीवन मे बॅधने वाली स्त्री यदि प्रेम है तो पुरुष विश्वास। प्रेम की लता विश्वास के तरु पर चढ़ कर चारो ओर फैलती है और फैलकर सुन्दर फल-फूल देती है। समाज और राष्ट्र की गोद इन्हीं फल-फूलो से तो भरती है, गौरवित होती है। कितने सौभाग्यशाली हैं वे पुरुप, जो अपने प्रेम की लता के लिये विश्वास के तरु का सा काम करते हैं। कितने धन्य हैं वे राष्ट्र और समाज, जो विश्वास के तरु पर चढ़ी हुई प्रेम की लता के फल-फूल से भरते हैं, गौरवित होते हैं। सोचो रमेश, जो मनुष्य अपने जीवन

की इस वस्तु को खो चुका हो, उसके जीवन को कैसे मिल सकती है शान्ति, कैसे मिल सकता है सुख। घोसले के उजड जाने पर पक्षी को कहीं शान्ति मिल सकी है ? फिर आज मेरे जीवन मे कैसे शान्ति का सुख हो सकता है भाई ! मेरा भी तो नीड़ आज उजडा हुआ है। मैं भी तो आज अपने जीवन की अमूल्य वस्तु को खोकर एक प्रकार से भिखारी सा बन गया हूँ। जीवन के चारो ओर जब दृष्टि पसार कर देखता हूँ, तब अन्धकार के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं देता। दिन रात उसी अन्धकार में असन्तोष की आग से जलता हूँ, पीड़ा की चिनगारियों से खेलता हूँ। भोजन, नींद, प्यास, सब कुछ जीवन से रूट सी गई है। पता नही, कब भूख लगती है, कब प्यास मालूम होती है और कब आती है ऑखो में नींद। तुम पूछोगे रमेश, यह सब क्यो है, क्यो ? इसलिये भाई, कि मेरे दाम्पत्य-जीवन के प्रेम की लता न प्रेम की लता है और न मै विश्वास का तरु। प्रेम की लता विश्वास के तरु पर चढकर फैली हुई अवश्य है, पर वह हॅसतीं नहीं, फल-फूल नही देती। प्रेम की लता जहॉ अपने विश्वास-तरु की डालियो में जीवन का संचार करती है, वहॉ मेरी प्रेम की लता छोड़ती है विषकी पिचकारियॉ। आह उसी से तो मैं जला जा रहा हूँ रमेश !

पर क्यो मेरा दाम्पत्य-जीवन उजड़ा हुआ है ? जब हम दोनों स्त्री-पुरुषो के हृदय में शिक्षा की ज्योत्स्ना है, तब हम क्यो अन्धकार में भटक रहे हैं, क्यों अशान्ति की आग से खेल रहे है ? यही क्यो, और जब हम दोनो विवाह के पूर्व एक दूसरे को भली प्रकार देख-सुन चुके थे, तब क्यों आज है हम दोनो के जीवन मे कलह ? विवाह के सूत्र में बॅधते हुये हम दोनों ने कभी इसकी कल्पना तक न की थी, कभी इसकी आशा तक न थी।

सोचा था, दोनो शिक्षित है, पढ़े-लिखे हैं, विवाह के पश्चात् बितायेगे सुख और शान्ति का जीवन। साथ-साथ जीवन के मार्ग पर चलेंगे। दोनो मे एक दूसरे के प्रति प्रेम होगा और होगा विश्वास, पर आज वह सब कल्पना सी ज्ञात हो रही है रमेश! आज मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानो मैने जो वह दीवाल खड़ी की थी, वह केवल बालू की थी। बालू की दीवाल ही की भाँति तो वह धीरे धीरे खिसक रही है। आश्चर्य नही, एक दिन दीवाल के नाम पर उस स्थान पर कुछ न रह जाय। पर ऐसा क्यो हुआ रमेश, क्यों हुआ? तुम्हीं नही, समाज और संसार का एक-एक व्यक्ति ऐसे प्रश्नो का उत्तर जानने के लिये अधिक उत्सुक रहता है। जानना भी चाहिये समाज और संसार के एक-एक व्यक्ति को ऐसे प्रश्नो का उत्तर! ये प्रश्न समाज और संसार के एक-एक व्यक्ति के प्रश्न हैं। यदि समाज के एक-एक व्यक्ति इन समस्याओ का सुन्दर हल संसार के सामने रख दें तो भटकने वाले मनुष्यो के जीवन को एक मार्ग मिल जाय। मार्ग न मिलने ही के कारण तो हम दोनो भटक रहे हैं रमेश! दाम्पत्य-जीवन के मार्ग पर एक भटकता हुआ मनुष्य! वह क्या उत्तर दे सकता है रमेश अपने जीवन की मौलिक समस्याओ का! वह उत्तर दे या न दे, किन्तु अपनी कठिनाइयो का चित्र तो वह समाज के सामने रख ही सकता है और संकेत कर सकता है उस भाव की ओर, जिसके आधार पर उसकी कठिनाइयो के चित्रो की सृष्टि की गई है। मै भी आज तुम्हारे सामने अपनी समस्याओ का एक चित्र रख रहा हूँ रमेश! तुम्ही बताओ मै कैसे इन्हे सुलझाऊँ, कैसे इनकी ग्रन्थियो को खोल कर उन्हे अपने जीवन के अनुकूल बनाऊँ!

मेरे दाम्पत्य-जीवन की समस्याये बड़ी ही उलझी हुई हैं रमेश,

बड़ी ही जटिल हैं। वास्तव में बात तो यह है कि यहाँ दाम्पत्य-जीवन है ही नहीं। कहने और देखने के लिये हम स्त्री-पुरुष का अस्तित्व है अवश्य, पर है वह नहीं के बराबर। दोनो के बीच में एक प्रबल खाई है, एक बहुत बड़ा मतभेद है। स्त्री घर मे मित्र की भाँति रहना चाहती है और मैं चाहता हूँ वह रहे पत्नी की भाँति। वह कहती है, स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य-जीवन मे समानाधिकार है, मैं कहता हूँ अधिकार का यहाँ प्रश्न ही कहाँ है ? यहाँ तो हम दोनो एक हैं। वह कहती है, दाम्पत्य-जीवन नारी को बेड़ियो मे कसकर बाँध रखता है, मैं कहता हूँ, यही तो है नारी के जीवन की शोभा। वह इसके लिये रखती है सामने युरोपीय नारियों का जीवन, और मैं रखता हूँ उसके सामने भारतीय स्त्रियो का आदर्श। मैं घर-गृहस्थी चाहता हूँ और चाहता हूँ घर में अपने तथा अपने बच्चो के जीवन के लिये शान्ति, पर उसे घर बसाना स्वीकार नहीं। घर-गृहस्थी उसे एक जंजाल-सा लगता है। वह साड़ी पहन सकती है, रंग-रंग के ब्लाउजों की कला-पूर्ण परख कर सकती है, बालो को सँवार सकती है, हारमोनियम बजाकर मधुर संगीत से घर को गुँजा सकती है, अँगरेजी बोल सकती है, गेद-बल्ला खेल सकती है, चाय बनाकर पी, और पिला सकती है, पर अपने दाम्पत्य-जीवन के निर्माण के लिये वह घर-गृहस्थी नहीं सँभाल सकती। तुम जानते हो रमेश, चार सौ रुपये मासिक मेरी आय है, किन्तु यदि तुम किसी दिन मेरे घर आकर देखो, तो तुम्हें घर में एक छटाँक आँटा भी न मिलेगा। खाने का जब समय होता है, तब सभी चीजे बाजार से मँगाई जाती हैं। घर का सारा काम नौकरों के द्वारा होता है। मैं इसे अधिक बुरा समझता हूँ रमेश, अधिक बुरा ! मैं कभी-कभी

अपने हृदय की बातो को पत्नी के सामने प्रकट भी कर दिया करता हूँ, पर जानते हो इसका परिणाम क्या होता है रमेश! घर मे कलह की चिनगारियॉ फूट पड़ती हैं। इस प्रकार फूट पड़ती हैं कि जीवन अधिक भार सा ज्ञात होने लगता है। जब कभी कलह की चिनगारियॉ फूटती हैं, वे अप्रसन्न होकर अपनी किसी सखी के यहॉ चली जाती हैं। मुझपर क्या बीतती है, इसकी उन्हें बिलकुल चिन्ता नही। अन्त में मै ही अपनी पराजय स्वीकार करके मनाता हूँ, घर वापस लाता हूँ, पर इस तरह कबतक जीवन चलेगा रमेश! जिस जीवन में शान्ति नहीं, सुख नहीं, सन्तोष नहीं, क्या उस जीवन की नाव भी कभी संसार-सागर में आगे बढ़ सकी है? मेरी नाव भी रमेश, एक दिन संसार-सागर मे डूब जायगी, उसकी भयानक लहरो मे पड़कर उसके गर्भ मे विलीन हो जायगी।

ये समस्याये केवल मेरे ही दाम्पत्य-जीवन में नही हैं रमेश, ये तो आज सारे समाज के पुरुषो के जीवन की समस्याये बन रही हैं। ज्यो-ज्यो स्त्रियो में ॲगरेजी शिक्षा और सभ्यता का प्रचार बढ़ता जा रहा है, त्यो-त्यो ये समस्याये भी अधिक व्यापक होती जा रही हैं। अधिकतर ये समस्याये उन्हीं पुरुषो के दाम्पत्य-जीवन मे हैं भी, जिन्होने शिक्षित कही जानेवाली लड़कियो को अपने जीवन की संगिनी बनाया है। मैने जहॉ तक दृष्टि पसार कर देखा है रमेश, अधिक ॲगरेजी पढ़ी-लिखी लड़कियॉ दाम्पत्य-जीवन के लिये असफल सिद्ध हुई हैं। असफल सिद्ध हुई हैं इसलिये कि वे अपने को एक युरोपीय नारी के रूप मे देखना चाहती हैं। ॲगरेजी शिक्षा और सभ्यता के कारण उन्हे भारतीयता अच्छी नहीं लगती। वे क्लबो मे जाकर पुरुषों के साथ बात-चीत करना पसन्द करती हैं, अपने

घर मे अपने पति के साथ रहना उन्हे पसन्द नही। वे युरोपीय नारी की तरह हर एक पुरुष से स्वतंत्रतापूर्वक मिलना चाहती हैं, बात-चीत करना चाहती हैं, पार्कों में घूमना चाहती हैं, पर अपने पति को सुख और सन्तोष देना नहीं चाहतीं। उनकी दृष्टि में पति कोई वस्तु है ही नहीं। वे तो पति को एक ऐसा डाकू समझती हैं, जो नारी के प्रेम और उसके हृदय को जबर्दस्ती छीन लेता है। वे अपने हृदय और प्रेम पर अपना अधिकार चाहती हैं। प्रेम का स्वतंत्र रूप से अभिनय करने के लिये ही वे विवाह और दाम्पत्य-जीवन के सूत्र मे बँधना नहीं चाहती। दाम्पत्य-जीवन के सूत्र मे बँधती भी हैं, तो अपने हृदय के प्रेम को अपने पास सुरक्षित रखती हैं। वे अपने प्रेम को सुरक्षित रखती हुई पति से वहीं तक अपना सम्बन्ध रखती हैं, जहाँतक उनके दैहिक और आर्थिक सुख का प्रश्न होता है। उनकी धारणा है, विवाह करने के पश्चात् भी नारी जिस किसीके साथ प्रेम कर सकती है:, जिस किसीके साथ कहीं भी स्वतंत्रता-पूर्वक घूम सकती है। उसी प्रकार घूम सकती है, जिस प्रकार एक युरोपियन नारी घूम रही है। एक इसी प्रकार की नारी ने अपने नवीन दाम्पत्य-जीवन के लिये महात्मा गाँधी से जब आशीर्वाद माँगा, तब उन्होने उत्तर रूप में जो कुछ भेजा, उसे प्रसंगवश यहाँ अंकित कर देना अनुचित न होगा। सुनिये—'अभी थोड़े दिन हुए अहमदाबाद में एक स्त्री पुरुष ने अपना विवाह किया। इस विवाह के पूर्व दोनो विवाहित थे और दोनो थे स्वतंत्र विचार के। नारी विवाह के सूत्र मे बँधने पर भी उस पुरुष से बराबर मिला करती थी। दोनो में इस प्रकार प्रेम हो गया और दोनो ने ही अपने वैवाहिक बन्धन को तोड़ कर आपस में विवाह कर लिया। विवाह करने के पश्चात्

दोनो ने ही अपने इस जीवन के लिये महात्मा गाँधी से आशीर्वाद माँगा। महात्मा गाँधी ने उत्तर दिया—'आप लोगो ने इस विवाह के द्वारा समाज और राष्ट्र का कौन बहुत बड़ा कल्याण किया है जो मैं आशीर्वाद दूँ।' पर रमेश, नवीन विचारो के साँचे में ढली हुई स्त्रियो के सामने तो समाज और राष्ट्र का प्रश्न रहता ही नही। उनके सामने तो प्रश्न रहता है, केवल अपना, अपने जीवन का। वे जो कुछ भी करती हैं, अपने जीवन के सुख और सन्तोष के लिये करती हैं। उन्हें जहाँ अधिक से अधिक सुख और सन्तोष मिलने की आशा होती है, वे वही स्थान अपने लिये चुनती हैं। जब उन्हे किसी स्थान मे उचित रूप से सुख और सन्तोष नही मिलता, तब वे उसे छोड़ देती हैं, उसका परित्याग कर देती हैं। इस परित्याग में उनके हृदय को कुछ भी कष्ट नहीं होता रमेश, ममता उन्हे कुछ भी दुख नहीं देती।

जब ऐसा होता जा रहा है आज की नारी का आचार-विचार, तब क्यो न बनेगा दाम्पत्य-जीवन दुखदाई, क्यो न निकलेगा उसके भीतर से जहरीला धुँआँ। दाम्पत्य-जीवन ऐसी स्त्रियो के लिये नहीं है रमेश! दाम्पत्य-जीवन तो उन साधिकाओ के लिये है, जो प्रेम के द्वारा अपने पति को शक्ति का दान देती हैं और करती हैं अपने मातृत्व का विकास। मुझे तो आज की नारी का आचार-विचार देखकर ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानो उसके भीतर से मातृत्व का लोप होता जा रहा है। ऐसी अधिकाश स्त्रियाँ तुम्हे मिलेगी रमेश, जिन्हे माता बनना हृदय से पसन्द नहीं। जो विवशत: इस पद पर आसीन होती हैं, तुम्हें ज्ञात ही है, वे किस प्रकार करती है अपने बच्चो का पालन-पोषण। मैने अधिकाश ऐसी स्त्रियो को

देखा है, जो अपने हृदय के टुकड़े को नौकरो और दाइयों के ऊपर छोड़-कर एक प्रकार से बिलकुल निश्चिन्त हो जाती हैं । कपड़े गन्दे हो जाने के डर से वे कभी अपने बच्चो को गोद तक मे नही लेतीं । बहुत सी स्त्रियाँ सौन्दर्य का तार टूट जाने के डर से अपने छोटे छोटे बच्चो को स्तन-पान तक नहीं करातीं । मेरे मुहल्ले में एक अँग्रेजी पढ़ी-लिखी अध्यापिका हैं । उनके जब बच्चा पैदा होता है, तब वे उसे अपने पति को सौप देती हैं । पति ही सारा काम बच्चे का करता है । जिस समय अध्यापिका महोदय स्कूल में अध्यापन का कार्य करती हैं, उस समय पति महोदय घर पर बच्चे का मल-मूत्र उठाते हैं और उसे कृत्रिम दूध पिलाते हैं । एक वैज्ञानिक डाक्टर ने भारत के नवजात बच्चो की मृत्यु-संख्या पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर लिखा है—'भारतवर्ष मे इधर दस पन्द्रह वर्षों से कृत्रिम दूध की शीशियो की इतनी खपत होने लगी है कि उसकी विक्री को देखकर अधिक आश्चर्य करना पड़ता है ।' जानते हो इसका कारण क्या है रमेश? यही कि अधिकाश स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये अपने बच्चो को स्तनपान तक नहीं करातीं । वे सफल माता नहीं बनना चाहतीं, दाम्पत्य-जीवन के कर्त्तव्यो का पालन करना नहीं चाहती। वे चाहती हैं उनका शारीरिक सौन्दर्य बना रहे और स्वतन्त्रतापूर्वक वे करती रहें स्वेच्छाचारिता का अभिनय । स्त्रियो की इस प्रवृति ने ही आज हमारे घरो में कलह की आग पैदा कर दी है रमेश ! आखिर पुरुष कहाँ तक अपने को दबायें। जब उनकी सामाजिक मान-मर्यादाओ का गला घुटने लगता है, तब उन्हें करना ही पडता है स्त्री की प्रगति का विरोध । इस विरोध का परिणाम कहीं कहीं बड़ा भयानक हो उठता है ! रमेश तुम

तो यह जानते ही हो, कि नारी एक ज्वालामुखी पर्वत के सदृश होती है। वह जब उस पर्वत की भाँति भड़कती है, तब भड़कती ही चली जाती है। उसकी प्रगति को रोक लेना सरल नहीं। वह अपनी प्रगति मे बाधा उपस्थित करने वाले व्यक्ति को अपने मार्ग से हटाने के लिये किसी भी उपाय का अवलम्बन ले सकती है। सुनो एक ऐसी ही नारी की जीवन-कहानी। उसने अपने पति को अपने मार्ग से हटाने के लिये उस पर गोलियाँ तक चलवा दी थीं। कहानी बम्बई के एक सुप्रसिद्ध मनुष्य के जीवन से निकली है। मान लो उस मनुष्य का नाम 'क' और उसकी पत्नी का नाम 'ख' है। 'क' पुराने विचार के व्यक्ति हैं, किन्तु 'ख' अँग्रेज़ी पढ़ी-लिखी और युरोपीय सभ्यता को पसन्द करने वाली नारी है। विवाह के पश्चात् दो वर्षों तक वह श्रीयुत 'क' के साथ शान्तिमय जीवन बिताती रही। तत्पश्चात् दोनो के जीवन से कलह की चिनगारियाँ निकलने लगीं। श्रीमती 'ख' स्वतन्त्ररूप से इधर उधर आने जाने लगी और पुरुषो से मिलने तथा बातचीत करने लगी। 'क' को यह अधिक अप्रिय ज्ञात होता। वह श्रीमती 'ख' की इस स्वतंत्र-प्रवृति का करने लगा जोरो से विरोध। ज्यो ज्यो विरोध उग्र होने लगा, त्यो त्यो श्रीमती 'ख' के हृदय में प्रबल होने लगी स्वतन्त्रता की भावना। आखिर एक दिन उन्होने कह दिया—मै तुम्हें अपना पति नहीं समझती। चाहे मै जहाँ जाऊँ, चाहे मै जहाँ रहूँ। पर 'क' महोदय को यह सब स्वीकार न था। वे श्रीमती 'ख' को अपनी पत्नी बना करके ही रखना चाहते थे। अन्त मे एक दिन जब दोनों मे कलह की चिनगारियाँ फूटीं, तब छोड़ दी श्रीमती 'ख' ने अपने पति पर पिस्तौल की गोली। गोली बहक गई। श्रीयुत 'क' बाल-बाल बच गये। उस दिन से दोनो में अब कोई एक

दूसरे से नहीं बोलता। सुनते हैं अब श्रीमती 'ख' का आचरण भी बिगड़ गया है, पर श्रीयुत 'क' अब उसकी प्रगति का बिलकुल विरोध नहीं करते। ऐसी घट रही हैं अनेक घटनायें हमारे दाम्पत्य-जीवन में रमेश! प्रति दिन तो समाचार पत्रों में ऐसी घटनाये प्रकाशित होती रहती हैं।

कलह तो दैनिक जीवन की एक वस्तु सी बन गई है रमेश! स्त्री पुरुष में जब प्रेम और विश्वास नही हैं, तब कलह की आग भड़केगी नहीं तो क्या होगा? हम सभ्य और शिक्षित कहलाने वाले व्यक्तियो से तो उन गरीबो का दाम्यत्य-जीवन अच्छा होता है रमेश, जो दिन भर काम करने के पश्चात् रात में सुख से अपनी झोपड़ी में सो जाया करते हैं। जिस समय रात में सारा संसार सुख की नींद सोता है, उस समय हम शिक्षित कहलाने वाले व्यक्तियो के दाम्पत्य-जीवन में न जाने कितनी घटनायें घटती हैं और न जाने होते हैं कितने काण्ड! एक आई० सी० यस० पास मनुष्य के एक नौकर ने बताई थी मुझसे इस सम्बन्ध की कुछ रोचक घटनायें! मै उन घटनाओ को भी इन पत्रो में डाल देना चाहता हूँ। डाल देना चाहता हूँ इसलिये कि लोग यह देखे कि हम सभ्य और शिक्षित कहलाने व्यक्तियों का दाम्पत्य-जीवन कैसा विषाक्त है, कैसा कटु है—! मै कलकत्ता से इलाहाबाद आ रहा था। उसी गाड़ी के सेकण्ड क्लास में यात्रा कर रही थीं एक मेम साहब। कदाचित् वे काश्मीरी ब्राह्मण थीं। मै कह नहीं सकता, वे कौन थी और कहाँ जा रही थी, पर कर रही थी अकेली यात्रा। साथ मे केवल एक नौकर था, जिसकी कमर मे सरकारी पेटी बँधी हुई थी। संयोग से वह कई डिब्बो का चक्कर लगाता हुआ मेरे थर्ड क्लास के डिब्बे मे आकर मेरे पास बैठ गया। गाड़ी जब किसी स्टेशन पर खड़ी होती,

तब वह उतर जाता और चलने के समय फिर आकर बैठ जाता। मैने उससे पूछा—कौन हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे? उसने उत्तर दिया—बम्बई जाऊँगा। कलकत्ते से आ रहा हूँ। मेम साहब के साथ हूँ। मेरी उत्सुकता बढ़ी। मैंने उससे पूछा—मेम साहब क्या अँगरेज हैं? उसने उत्तर दिया, नहीं हिन्दुस्तानी, काश्मीरी ब्राह्मण! मैंने पूछा—इनके पति क्या करते हैं? उसने उत्तर दिया—साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। चार हजार रुपया वेतन पाते हैं। बडे भारी सरकारी आफ़िसर हैं।' मै चुप रह गया। कुछ देर के पश्चात् उससे इधर उधर की बाते करने लगा। बातो के सिलसिले में मैंने उससे पूछा—क्या तुम्हारी मेम साहब इसी प्रकार अकेली यात्रा किया करती हैं? उसने कहा—जी हाँ! मैने पूछा—साहब इसका कभी विरोध नहीं करते? उसने क़हा—अजी विरोध क्यो करें? जहाँ वे चाहते हैं जाते हैं, जहाँ ये चाहती हैं जाती हैं। दोनो में कोई किसी का विरोध नहीं करता।' मैंने कहा—ठीक है, ऐसा ही होना चाहिये। लेकिन यह तो बताओ घर पर तुम्हारी मेम साहब और साहब किस प्रकार की जिन्दगी बिताते हैं?' वह हँसा। उसने कहा—अजी साहब, मियां-बीबी अवश्य हैं, पर दोनों में कोई रिश्ता नहीं रहता! मैंने पूछा, इसका क्या मतलब? उसने उत्तर दिया—दोनो के अलग अलग कमरे हैं। दोनो अपने अलग अलग कमरो में खाना ख़ाते, सोते और रहते हैं। मियाँ अपने कमरे में क्या कर रहे हैं, यह बीबी को नहीं मालूम और बीबी अपने कमरे में क्या कर रही है यह मियाँ को नहीं मालूम। दोनों में से कोई बिना एक दूसरे की आज्ञा के किसी के कमरे मे प्रवेश नहीं कर सकता!

चपरासी की इन बातो को सुन कर मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैं

इस उच्च वर्ग के मनुष्यो के दाम्पत्य-जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातो को जानने के लिये अधिक व्यग्र हो उठा। मैने अपने मित्र से एक सिगरेट लेकर उसे चपरासी की ओर बढ़ाते हुये उससे पूछा—अच्छा यह बताओ, साहब के घर का प्रबन्ध कौन करता है? क्या मेम साहब? उसने उत्तर दिया—अजी नही जनाब! घर का सारा प्रबन्ध नौकरो के द्वारा होता है। जब खाना बनने के लिये होता है, तब यह समझ लिया जाता है कि आज कितने लोग खायॅगे! अक्सर साहब और मेम साहब के अलग-अलग मेहमान उनके पास आया करते हैं। इन खाने वाले मेहमानो का हाल साहब और मेम साहब को छोड़ कर और किसी को मालूम नही रहता। जितने आदमियों का खाना बनना होता है, उसी के हिसाब से बाजार से सामान मॅगाया जाता है। सामान रोज आता है और रोज खर्च होता है। नौकर और दूकानदार की बन आती है। एक की जगह पर चार खर्च होता है। बेचारे साहब चार हजार रुपया महीना पाते हैं, पर एक पैसा भी नही बचता। चपरासी की बात को सुन कर मुझे अधिक दुख हुआ। मै मन ही मन सोचने लगा—जब घर की लक्ष्मी का यह स्वरूप है, तब साहब के पास पैसा बचेगा कहॉ से? मै कुछ देर तक चुप रह कर फिर बोल उठा—क्या साहब और मेम साहब मे कभी झगड़ा भी होता है? उसने उत्तर दिया—क्यो नही? झगड़ा तो ऐसा होता है कि हम और आप उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। हमारे साहब जरा बड़ी अच्छी तबियत के आदमी हैं। इसलिये जहॉ तक होता है, वे झगड़े को बचाते हैं। फिर भी कभी कभी झगड़ा हो ही जाता है और साल-साल भर बीत जाते हैं, मियॉ-बीबी में बोलचाल तक नहीं होती। वे अलग अपने किसी मित्र पुरुष के साथ घूमती हे और वे अलग

अपनी किसी मित्र स्त्री के साथ ! दोनो को आपस में एक दूसरे का न बोलना कुछ अखरता ही नहीं ! इनके पहले इस ओहदे पर जो साहब थे, उनमें और उनकी बीबी मे तो ऐसी तकरार होती थी कि सारा बॅगला गूॅज उठता था ।' मैंने उससे पूछा आखिर उनमे झगड़ा क्यो होता था ? उसने कहा—यह मै कैसे बता सकता हूँ साहब ! किन्तु जहॉ तक मुझे मालूम है, झगड़ा घूमने-फिरने के कारण हुआ करता था । मेम साहब जब घूम-फिर कर रात को लौटती थीं, तब साहब उन पर अधिक नाराज होते थे । यही नाराजगी कभी-कभी झगड़े की शकल धारण कर लेती थी ।'

यह है हमारे समाज के दाम्पत्य-जीवन का एक चित्र रमेश ! क्या इस प्रकार के दाम्पत्य-जीवन से कोई पुरुष कभी सुखी हो सकता है ? क्या इस प्रकार के दाम्पत्य-जीवन से यह अच्छा नही है कि स्त्री-पुरुष आपस में विवाह के सूत्र मे न बॅधे ? तुम कहोगे रमेश, विवाह न करने से स्त्री-पुरुषो मे बढ़ेगा असंयम और बढ़ेगी स्वेच्छाचारिता । मैं भी यह कहता हूॅ रमेश, स्त्री-पुरुषो को आपस मे विवाह करना चाहिये, पर विवाह करके उन्हे बिताना चाहिये श्रेष्ठ दाम्पत्य-जीवन । विवाह की मर्यादा इसी मे है कि स्त्री-पुरुष दोनो ही अपनी-अपनी शक्तियो को विकासित करें । पुरुष को एक योग्य पिता बनना चाहिये और नारी को एक सफल माता । दोनो मे एक दूसरे के प्रति प्रेम होना चाहिये; विश्वास होना चाहिये और होनी चाहिये सहानुभूति । दोनो जिस महाव्रत के साथ अपने जीवन-क्षेत्र में उतरे है, उन्हे उसे निभाना चाहिये, उसका पालन करना चाहिये । पत्नी को पति के साथ अपने कर्तव्यो का पालन करना चाहिये और पति को अपनी पत्नी के साथ । कर्त्तव्यो के निर्धारण का आधार अपना देश, अपना

समाज और अपनी संस्कृति होनी चाहिये। एक युरोपीय नारी युरोपीय सभ्यता के पथ पर चलकर अपने जीवन, समाज, और राष्ट्र का कल्याण कर सकती है, पर भारतीय नारी कभी भी कर नहीं सकती कल्याण अपने समाज का उस सभ्यता के पथ पर चलकर। आज हमारे दाम्पत्य-जीवन की पीडा केवल इसीलिये तो है कि नारी ने अपनी संस्कृति और सभ्यता का परित्याग कर दिया है।

तुम्हारा ही साथी

फणीन्द्र
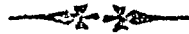
नारी का ईर्षालु मन

बनारस

१२—४—४१

प्रिय रमेश !

तुम जानते हो, मनुष्य निरन्तर अपने जीवन के लिये सुख और शान्ति की खोज करता है। मनुष्य जब इस संसार मे पैदा होता है और उसकी रगो में कुछ शक्ति आ जाती है, उसकी खोज प्रारम्भ हो जाती है। वह आजीवन इसी खोज मे लगा रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक का उसका समय इसी खोज में बीत जाता है। वह अपने जीवन के सुख और शान्ति के अनुसन्धान के लिये क्या नहीं करता ? सभी कुछ तो। परिश्रम की आग मे जलता है, चिन्ताओ के मार्ग पर चलता है, और विचारो के यान पर चढ़कर करता है परिभ्रमण। कितने साधनो का अवलम्ब लेता है, कितने उपायो का अञ्चल पकड़ता है। स्त्री-पुरुषो में होने वाला यह विवाह भी तो उन्ही मे से एक अवलम्ब है रमेश ! यदि तुम बिवाह के मौलिक उद्देश्यो पर विचार करो तो तुम्हे स्पष्टतः यह ज्ञात हो जायगा भाई कि स्त्री-पुरुष आपस में विवाह करते हैं केवल अपने जीवन के सुख और शान्ति के लिये। यद्यपि विवाह के उद्देश्यो मे सृष्टि का विकास और जीवन का संयम भी सन्निहित है, किन्तु एक प्रकार से ये जीवन के

सुख और शान्ति के पर्यायवाची ही हैं। विवाह के द्वारा प्राप्त होने वाले जिस सुख और शान्ति की हम कल्पना कर रहे हैं, उसमे वे सभी उपकरण हैं, जिनसे जीवन को विकास मिलता है और मिलता है समाज तथा राष्ट्र को बल। अब जरा तुम इस बात पर विचार करो रमेश, कि आखिर एक स्त्री अपना विवाह क्यो करती है? विवाह के द्वारा वह अपने जीवन को एक सीमा और सयम मे बाँधती है। विवाह के ही द्वारा वह अपने उन कर्त्तव्यो का अनुसन्धान करती है, जिसके लिये इस जगत मे उसकी सृष्टि हुई है। दूसरे शब्दो मे वह अपूर्ण से पूर्ण होती है। इसका क्या तात्पर्य है रमेश? यही कि वह अपने कर्तव्यो का अनुसन्धान करके और उनका पालन करके मन मे सुखी होती है, जीवन मे शान्ति का अनुभव करती है। इसी प्रकार पुरुष भी विवाह सुख और शान्ति ही के लिये करता है। विवाह ही के द्वारा पुरुष अपने जीवन-क्षेत्र मे उतरता है और विवाह ही के द्वारा वह अपने जीवन-क्षेत्र के लिये प्राप्त करता है एक शक्ति, जो शक्ति ही की भाँति उसकी रगो में शक्ति का संचार करती है और बनाती है उसे बलवान। दूसरे शब्दो मे वह भी विवाह ही के द्वारा अपूर्ण से पूर्ण होता है। कितना सुखी बनाती है पुरुष को उसकी यह पूर्णता! उसका वर्णन शब्दो से नहीं किया जा सकता रमेश!

अब तो तुम समझ गये रमेश, कि स्त्री-पुरुष आपस में विवाह क्यो करते हैं? विवाह के सम्बन्ध मे देश-विदेशो के मनुष्यो की अनेक प्रकार की कल्पनायें हैं, पर मैंने भारतीय संस्कृति की झाँकी से विवाह का इसी रूप मे दर्शन किया है। मुझे अधिक दुःख होता है रमेश, जब मै देखता हूँ कि विवाह के सूत्र मे बँधने वाले स्त्री-पुरुष उसके मर्मों और

आदर्शों को नहीं समझते ! न समझने ही के कारण तो वे अपने हाथो अपने सुख और शान्ति की दुनिया को उजाड़ देते हैं । पारस्परिक प्रेम और विश्वास को खोकर घर में एक ऐसी आग पैदा कर देते हैं कि जीवन का सारा सुख और जीवन की सारी शान्ति उसकी तीव्र लपटो से झुलस उठती है । मै आज जब समाज में चारो ओर दृष्टि डाल कर देखता हूँ तब घर-घर से मुझे ऐसी लपटें निकलती हुई दिखाई दे रही हैं । न जानें कितने घर कलह की इन लपटो से जलकर भस्म हो गये, न जाने कितने परिवार पतन के सागर में डूब गये और न जाने कितने मनुष्यो की भाग्य-श्री अन्धकार के क्षितिज मे सदा के लिये विलीन हो गई । पति पत्नी से लड़ता है और पत्नी पति से । सास बहू से लड़ती है और बहू ननँदों से । देवरानियो जेठानियो मे संघर्ष होता है, और संघर्ष होता है पिता-पुत्र मे, भाई-भाई मे । वैवाहिक जीवन क्या है आज का,—युद्ध का एक प्रबल मोर्चा । घर-घर में आज इस मोर्चे की धूम है । गरीब से लेकर अमीर तक सभी ताल ठोक-ठोक कर इस मोर्चे पर जूझते हैं और करते हैं अपने जीवन के समस्त सुखों और शान्ति का हवन । पत्नी अपने जीवन के सुखो को आग में झोक सकती है, किन्तु पति की एक बात को सहन नही कर सकती । पति अपने जीवन को असन्तोष का संसार बना सकता है, किन्तु पत्नी की बातो की उपेक्षा नही कर सकता । पुत्र घर से भाग कर परदेश जा सकता है, किन्तु अपने पिता का सम्मान नही कर सकता । भाई भाई का सिर फोड़ सकता है, किन्तु आपस में एक दूसरे को क्षमा नहीं कर सकता । स्त्रियॉ घर के मान-सम्मान को धूलि में मिलाकर भिखारिणी बन सकती हैं, पर आपस मे मिलकर नही रह सकतीं । कितने भूले

हुए हैं ये लोग रमेश ! क्या इसी के लिये ये लोग परिवार के सूत्र में बँधते हैं ? क्या यही है विवाह का उद्देश्य ? क्या ये लोग स्वयं अपने हाथों से अपने जीवन को सर्वनाश की आग मे नहीं डाल देते ? क्या ये लोग मानवता के लिये कलंक स्वरूप नही हैं ?

किन्तु ये लोग ऐसा करते क्यो हैं रमेश ? जब लोग जानते हैं कि विवाह जीवन के सुख और शान्ति के लिये किया जाता है, तब लोग क्यों जीवन को कलह की आग में डालते हैं ? जब लोग यह समझते हैं कि पारस्परिक कलह घर का संहार दानव का सा करती है, तब लोग क्यो घर में उसकी सृष्टि करते हैं, क्यो उसे स्थान देते हैं ? मैंने इन प्रश्नों पर भली भाँति विचार किया है रमेश ! मैं यह नहीं कह सकता कि लोग विवाह के उच्चादर्श को समझते हैं। मैंने जब अनेक स्त्री-पुरुषो से यह प्रश्न किया, कि आखिर उन्होने विवाह किस मतलब से किया है, तो पुरुषो ने विभिन्न उत्तर दिये। हॉ, स्त्रियो के उत्तर में अवश्य समानता पाई गई। पुरुषो में किसी ने कहा, मैंने अपना विवाह गृहस्थी बसाने के लिये किया है, किसी ने कहा, बिना स्त्री के काम नही चलता, इस लिये विवाह किया है और किसी ने कहा कि विवाह मैंने अपना वंश चलाने के लिये किया है, पर किसी ने यह न कहा कि विवाह मैंने जीवन के सुख और शान्ति के लिये किया है। स्त्रिया में अधिकांश का उत्तर यही होता है कि स्त्री को विवाह करना चाहिये, इसलिये मैंने भी विवाह किया है। स्त्री को क्यो विवाह करना चाहिये, इसका उनके पास कुछ भी उत्तर नहीं। इस प्रकार के प्रश्नों और उनके उत्तरों को जानने के पश्चात् मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ रमेश, कि विवाह के उच्चादर्श को लोग जानते ही नहीं। जिस प्रकार लोग

पुरातन काल से चली आती हुई अन्यान्य प्रथाओ का परिपालन करते है, उसी प्रकार विवाह को भी एक प्रथा समझ कर उसका पालन करते हैं। अन्यान्य प्रथाओ का स्त्री-पुरुषो के जीवन के साथ क्षणिक और सामयिक सम्बन्ध होता है, किन्तु यह प्रथा उन्हे आजीवन के लिये एक दूसरे की डोर में बॉध देती है। वे विवाह के उच्चादर्श को तो जानते नहीं, इस लिये जब उनके व्यक्तिगत स्वार्थो और सुखो पर कहीं से रंच मात्र भी आघात होता है, तब वे एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। इस प्रकार विरोधी बन जाते हैं, कि घर को अशान्ति और असन्तोष का संसार बना लेते हैं! पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहू, और देवरानियों-जेठानियो में इस प्रकार जितने झगड़े होते हैं, अपने व्यक्तिगत सुखो, शान्ति, और सन्तोष के लिये होते हैं! विवाह और परिवार का उच्चादर्श न जानने के कारण वे अपने-अपने सुखो और सन्तोष के सामने परिवार के सुखो और सन्तोष को कुछ नही समझते। अत: कलह की अग्नि में उसे जला डालने मे उन्हे कुछ भी पीड़ा नहीं होती, उन्हे कुछ भी दुख नहीं होता!

हमारे अन्त:पुरो से आज कलह की जो चिनगारियॉ निकल रही हैं, उनमें स्त्रियो का ही हाथ अधिक होता है रमेश! मैंने ऐसे अनेक विवादग्रस्त घरो में जाकर पता लगाया तो कलह की चिनगारी मुझे स्त्रियो ही के भीतर से निकलती हुई दिखाई पड़ी। सबसे पहले कलह का सूत्रपात घर की स्त्रियो में ही होता है। यदि पुरुष समझदार होते हैं तो वे किसी न किसी प्रकार उसे शान्त कर देते हैं अथवा उसकी ओर से ऑखे मूॅद लेते हैं, अन्यथा वे भी उसी मे योग देकर घर को विस्तृत रणस्थल बना देते हैं। मै अनेक विवादग्रस्त परिवारो के चित्रो को देखने के पश्चात् ही इस

परिणाम पर पहुॅचा हूॅ कि कलह का सूत्रपात पहले स्त्रियो ही की ओर से होता है। स्त्रियॉ ही पुरुषो के हृदय मे वह आग पैदा करती हैं, जो भाई, पिता, बहन और मॉ के प्रेम को भी जलाकर खाक कर देता है। पुत्र का विवाह जब तक नही होता मॉ बड़े सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करती है, पर घर मे बहू आते ही वही मॉ हो जाती है क्रोध और असहिष्णुता की साक्षात प्रतिमा। देवर का विवाह जब तक नही होता भाभी का जीवन बड़े सन्तोष के साथ बीतता है, पर घर में देवर की बहू आते ही भाभी का जीवन असन्तोष का संसार बन जाता है। मेरे मित्रो में एक वकील साहब हैं, जिनका जीवन इस समय आन्तरिक कलह से अधिक विपन्न हो उठा है। जब तक उनके छोटे भाई का विवाह नहीं हुआ था, वे अपनी स्त्री के साथ बड़े सुख का जीवन व्यतीत कर रहे थे। किन्तु भाई का विवाह होते ही घर मे कलह की आग पैदा हो उठी। दोनो स्त्रियो मे खूब डट कर लड़ाई होती है। वकील साहब अच्छे विचार के व्यक्ति हैं। वे अपने भाई से अलग होकर जीवन बिताना नही चाहते, किन्तु उधर स्त्रियो में होती हुई लड़ाई बन्द ही नहीं होती। इसी प्रकार अनेक ऐसे परिवार देखे गये हैं, जिनमे स्त्री जब तक अकेली थी, उसका जीवन सुख और शान्ति के साथ बीत रहा था, किन्तु दूसरी स्त्री के घर मे प्रवेश करते ही उसी का जीवन हो गया असन्तोष और अशान्ति का संसार। जो कभी अकेली रहने पर करती थी अपने दाम्पत्य और गृह-जीवन का निर्माण, वही घर मे दूसरी स्त्री का चरण पडते ही करने लगती है घर का सर्वनाश। विचित्र प्रकृति होती है नारी की रमेश! क्या तुमने कभी नारी की इस प्रकृति पर विचार किया है? क्या तुमने कभी सोचा है कि एक नारी

दूसरी नारी को देखते ही क्यो कुपित हो उठती है, क्यो उसके जीवन की शान्ति भंग हो जाती है ?

नारी प्रकृति से ईर्षालु होती है रमेश ! संसार के बडे-बड़े मनोवैज्ञानिक नारी की प्रकृति का अध्ययन करने के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि नारी के हृदय मे प्रबल रूप से ईर्षा की भावना मौजूद रहती है। एक नारी पुरुष के साथ शान्ति-पूर्वक रह सकती है, किन्तु वही किसी स्त्री के साथ शान्ति-पूर्वक नहीं रह सकती। भले ही दो चार स्त्रियॉ एक स्थान पर शान्ति-पूर्वक रह ले, पर इसके पश्चात् उनके हृदय मे किसी न किसी बात को लेकर ईर्षा की भावना अवश्य पैदा हो जायगी। हमारे अन्त:पुरो मे आज जो कलह की आग भयानक रूप से पैदा हो उठी है, उसका यही कारण है रमेश ! जिस घर मे एक स्त्री रहती है, वह तो अकेली होने के कारण बड़ी शान्ति के साथ अपना जीवन बिता देती है। उसकी ईर्षा की आग को भड़कने का अवसर ही नही मिलता। इसके विपरीत जिन घरो में दो चार स्त्रियाँ रहती हैं, वे आपस मे एक दूसरे को देखकर जलती हैं, मन ही मन एक दूसरे के प्रति ईर्षा करती हैं। उनकी ईर्षा के आधार रुपये-पैसे,-गहने, कपड़े और रूप-यौवन इत्यादि चीजे होती हैं। स्त्रियो मे प्रायः अहंभाव भी अधिक होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि सुन्दरी और वैभवसम्पन्न नारी उन स्त्रियो से प्रेम-पूर्वक बात नही करती, जो रूप-गुण और वैभव मे उससे कम होती हैं। कमासू पति की पत्नी घर की अन्यान्य स्त्रियो को बहुत ही तुच्छ समझती है। स्त्रियो में बहुत ही कम ऐसी स्त्रियॉ होती हैं, जिनमें ईर्षा की भावना नही होती और जो रूप-गुण-सम्पन्न होनेपर भी अपनी अन्यान्य बहनों से प्रेम-पूर्वक

बात करती हैं। इंगलैण्ड की सुप्रासिद्ध लेखिका मिस मार्गरी लारेन्स अपनी एक पुस्तक में लिखती हैं—'स्त्री हमेशा अकेली रहना चाहती है। वह किसी समाज मे जाना इसलिये पसन्द नही करती कि वहॉ उसे अन्यान्य स्त्रियो से प्रतिद्वन्दिता करनी पड़ती है। स्त्रियॉ आपस मे एक दूसरे को देखकर जलतीं और ईर्षा करती हैं। इतना ही नही, स्त्रियॉ दूसरों के गुणो, हाव-भाव और आदतो को चुरा लेने मे भी बड़ी तीव्र होती हैं। यहॉतक कि यदि किसी स्त्री को किसी सुन्दरी स्त्री का पति पसन्द आ जाय तो वह उसे भी चुरा लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती।' इसके आगे उसी पुस्तक मे मिस मार्गरी लारेन्स ने और भी लिखा है—' पुरुप एक साथ रह सकते हैं, पर कई स्त्रियॉ एक साथ नही रह सकती। स्त्रियॉ जहॉ किसी स्थान में एकत्र होती हैं, उनमें मन ही मन प्रतिद्वन्दिता आरंभ हो जाती है।' एक अमेरिकन लेखक ने भी स्त्रियो की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'स्त्रियॉ स्वभावतः ईर्षालु होती हैं। संसार मे ऐसी स्त्रियो को संख्या बहुत कम होगी, जिनके हृदय मे किसी रूप-गुण सम्पन्न नारी के प्रति ईर्षा की भावना न उत्पन्न होती हो।' अँगरेजी की एक सुप्रसिद्ध लेखिका का कथन है कि उसकी रचनाओ पर जितने तीव्र आघात स्त्रियो के द्वारा हुए हैं, उतने कदाचित् ही किसी पुरुष के द्वारा हुए हो। हमारे देश के बहुत से विद्वानो ने भी स्त्रियो की इस प्रकृति पर प्रकाश डाला है। स्त्रियो की यह ईर्षालु प्रकृति ही तो हमारे घरो मे होनेवाले झगड़ो का कारण है रमेश! इसी ने तो आज दाम्पत्य-जीवन को अधिक दुखद बना दिया है, अधिक भयानक। चाहे तुम जिस घर मे देखो, तुम्हें उसके भीतर से उठता हुआ धुऑ अवश्य दिखाई देगा। न जाने कितने

परिवार इस धुएँ से आकुल होकर अपना दम तोड़ रहे हैं, न जाने कितने युवक उसकी पीड़ा से व्याकुल होकर अपने को मौत के मुख मे डाल रहे हैं, और न जाने कितने घर उसकी भयानक लपटो में जल कर खाक होते जा रहे हैं।

उस दिन का दृश्य! मेरा हृदय काँप उठता है रमेश! उसके पूर्व तो मैंने इसकी कभी कल्पना तक न की थी। चैत वैसाख की रात थी। चाँदनी छिटकी थी। मै राजघाट के पुल के एक छोर पर बैठ कर गङ्गाजी के जल पर रजत सी नाचती हुई चन्द्रमा की किरणो को देख रहा था। सहसा मेरी दृष्टि एक दूसरी ओर गई। मैने देखा, कुछ दूर पर पुल पर खड़ा होकर एक मनुष्य गङ्गाजी की ओर देख रहा है। वह कभी इधर-उधर देखता और फिर कभी गङ्गाजी की ओर। मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। उसके रंग-ढंग को देख कर मेरे हृदय में सन्देह उत्पन्न हुआ, कहीं यह गङ्गाजी मे कूद कर आत्महत्या तो नहीं करना चाहता। मै धीरे से अपने स्थान से उठा और चुपके-चुपके उसके पास जाकर उसे पकड़ लिया। वह चमत्कृत हो उठा। उसने घूम कर मेरी ओर देखा। उसे देखते ही मै अवाक् हो उठा। वह एक सम्पन्न घराने का युवक, मेरा मित्र था। उसके बाल बिखरे थे। आँखे रोते-रोते सूज आई थी। उसने मुझसे कहा—छोड़ दो मुझे। मेरे जीवन का कल्याण इसी मे है कि मै अपने को गङ्गाजी के हवाले कर दूँ, पर मैं क्यो छोड़ने लगा उसे? मै उसे अपने साथ अपने घर ले गया। उसने मुझे बताया, एक सप्ताह से उसके घर में भयानक युद्ध मचा हुआ है। पहले बहुओ में लड़ाई हुई, फिर बेटा बाप से लड़ने लगा, भाई भाई से उलझ पड़ा, और फिर घर हो गया एक भयानक रण-

स्थल । यह तो मैंने उदाहरण के लिये तुम्हारे सामने एक घटना रखी रमेश, ऐसी घटनायें तो प्रति दिन हमारे घरो में घटती ही रहती हैं । न जाने कितने पुरुष प्रति दिन घर मे जली हुई कलह की आग से पीडित होकर अपने घर का परित्याग करते ही रहते हैं । कोई घर को छोड़ कर भाग जाता है, कोई जहर खा लेता है और कोई लगा लेता है अपने गले मे फासी ! ऐसी बात नही रमेश, कि घर के विद्रोह से केवल पुरुषो का ही जीवन अधिक विपन्न होता है, स्त्रियो को भी विपत्ति की झाड़ियो मे दौडना पड़ता है और बहाने पड़ते हैं मन मे पश्चाताप के आँसू, परन्तु फिर भी स्त्रियो का प्रकृत स्वभाव उन्हे विवश कर ही देता है रमेश ! वे घर की शान्ति और सुख का महत्त्व न समझ कर उसे अपनी ईर्षा की आग मे जला डालती हैं । तुम कहोगे रमेश, कि क्या इसका कुछ उपाय भी है ? मै कहता हूँ रमेश, हाँ है, और वह यह कि स्त्री और पुरुष दोनो ही विवाह के उच्चादर्श को समझें, परिवार के सुख और शान्ति को गौरव प्रदान करे ।

तुम्हारा जीवन-सखा

फणीन्द्र

फैशन, पुरुष को बाँध रखने के लिये

बनारस

१४-४-४१

मेरे बन्धु !

अपने दाम्पत्य-जीवन को विपन्न बनाने वाली बहुत सी समस्याओ का चित्र मै तुम्हारे सामने खीच चुका हूँ, आज भी एक ऐसा ही चित्र तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। दाम्पत्य-जीवन की जिस समस्या के आधार पर यह चित्र खीचा गया है, दाम्पत्य-जीवन का गला घोटने मे उसका विशेष हाथ है, उसकी विशेष शक्ति है। वह समस्या ! उसे लोग फैशन के नाम से पुकारते हैं। नारी के फैशन ने सचमुच आज एक समस्या का रूप धारण कर लिया है रमेश ! अॅगरेजी शिक्षा और सभ्यता के प्रचार के साथ-साथ जहॉ दाम्पत्य-जीवन के मार्ग पर अन्यान्य कठिनाइयो और आपदाओ के कॉटे बिछते जा रहे हैं, वहॉ फैशन भी रोड़े बिछाने मे कुछ बाकी नहीं उठा रहा है। भारतीय नारी जहॉ अनेक क्षेत्रो मे भारतीयता का परित्याग करती जा रही है, वहॉ उसका वेश-भूषा भी अधिक शीघ्रता के साथ बदलता जा रहा है। स्त्रियो की पोशाको मे इतने परिवर्तन हो रहे है कि इस समय यह कहना अधिक कठिन हो गया है कि किसी स्त्री को कैसे कपड़े पहनने चाहिये। फैशन से हमारा तात्पर्य केवल कपड़ो से ही नही है रमेश, वरन् इसके अन्तर्गत तो वे सभी चीजे आ जाती हैं, जिनसे

नारी अपना श्रृङ्गार करती और अपने सौन्दर्य को चमकाती है। तुम्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं है रमेश, कि नारी की श्रृङ्गार-वस्तुओ मे किस प्रकार अधिक वृद्धि हो उठी है। नारी अपने लिये जहॉ प्रति दिन तरह तरह की साड़ियॉ और गहने चाहती है, वहॉ वह अपने पास अनेक प्रकार की ऐसी वस्तुये भी रखना चाहती है जो उसके सौन्दर्य को बढ़ा सके और कर सके उसमें अधिक से अधिक पैदा चमक। ऐसी वस्तुओ मे तरह तरह के साबुन, सेन्ट, तेल, पाउडर इत्यादि चीजे होती हैं। स्त्रियॉ प्राय: सुन्दरता को बढाने वाली चीजो की खोज भी किया करती है। बहुत सी स्त्रियॉ ऐसी वस्तुओ के लिये अँगरेजी समाचार पत्रो मे विज्ञापनो की खोज किया करती हैं। मै ऐसी कई शिक्षित महिलाओ को जानता हूँ, जो केवल इसीलिये विलायत के कई समाचार पत्रो को मँगाती हैं। शिक्षित महिलाओ की बात यदि हम छोड़ दे रमेश, तो भी हमें यह कहना ही पड़ेगा कि हमारे घरो मे फैशन और सौन्दर्य को बढ़ाने का भाव व्यापक रूप से अधिक फैल रहा है। जा अँगरेजी पढी-लिखी स्त्रियॉ हैं, वे तो फैशन करती ही हैं, वे स्त्रियॉ भी फैशन करती हैं, जो घरो में रहती हैं और दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करती हैं। यह अवश्य है कि अङ्गरेजी पढी-लिखी स्त्रियो का फैशन जहॉ बॉध को तोडता है, वहॉ उनका फैशन एक सीमा मे सीमित रहता है। छोटी-छोटी लड़कियॉ तक फैशन करती हुई देखी जाती हैं। भारतीय स्त्रियॉ जितनी तीव्रता के साथ युरोप के फैशन को अपनाती जा रही हैं, यदि वे उतनी तीव्रता के साथ और कोई वस्तु अपना सकतीं, तो कदाचित् उससे भारतीय समाज और राष्ट्र का अधिक कल्याण होता, पर तुम जानते नहीं रमेश, कि स्त्रियो को समाज और राष्ट्र की अपेक्षा

अपना अधिक ध्यान रहता है ! फैशन स्त्रियो की सुन्दरता को बढ़ाता है, उस सुन्दरता को बढ़ाता है, जो नारी-जीवन की एक प्रधान वस्तु है, फिर वे क्यो न फैशन करे, क्यो न उसकी धारा मे बहे !

गुलामी का जीवन व्यतीत करने के कारण युरोप से जहाँ हमे और भी बहुत सी वस्तुयें मिली हैं, वहाँ फैशन भी हमारे लिये युरोपीय सभ्यता की एक देन है और एक ऐसी देन है, जो हमारे वास्तविक जीवन को घुला घुला कर मारती जा रही है । यदि तुम अँग्रेज़ो के पूर्व के भारत पर दृष्टि डालो रमेश, तो तुम्हे स्त्री-पुरुषो के जीवन में सादगी दिखाई पड़ेगी, अधिक से अधिक सादगी दिखाई पड़ेगी । देश में एक से एक अधिक सुन्दरी स्त्रियाँ थी, पर उनमे फैशन का रोग न था और न थी सुन्दरी बनने की कृत्रिम अभिलाषा । प्रकृत सौन्दर्य ही उनका धन था, और सौन्दर्य बढाने के लिये वे प्राकृतिक उपायो का अवलम्बन भी किया करती थीं, पर अँग्रेज़ों ने अपने आने के साथ ही अँग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के द्वारा हमारी अभिरुचियो मे बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया । हम पहले जहाँ प्रकृत सौन्दर्य के उपासक थे, वहाँ अब कृत्रिम सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देने लगे । नारी अपनी प्रकृत प्रकृति के कारण अपने जीवन के लिये निरन्तर ऐसी ही वस्तुओ को चाहती है, जिनकी प्राप्ति में उसे अधिक कष्ट न उठाना पड़े । भारतीय नारी ने जब देखा कि युरोप का फैशन उसकी सौन्दर्य—वृद्धि के लिये प्राकृतिक उपायो से अधिक सरल है, तब उसने उसे अपना लिया और वह उसे बड़ी तीव्र गति के साथ अपनाती जा रही है । उसे अपनाने में नारी को इस बात का ध्यान नही है, कि हमारा देश गरीब है या अमीर । उसे इस बात की भी चिन्ता नहीं है कि उसके पति

का कितना रुपया केवल उसकी फैशन—वस्तुओ के क्रय मे दूसरे देशो मे चला जा रहा है। सौन्दर्य को बढ़ाने की चिन्ता मे निमग्न नारी इस बात की चिन्ता करती ही नही रमेश! उसे तो चिन्ता रहती है अपने सौन्दर्य की। पति चाहे कर्ज ले, चाहे बिताये दुख का जीवन, पर उसका सौन्दर्य बढ़ना चाहिये, उसकी इच्छाओ के अनुसार उसकी फैशन—वस्तुये आनी चाहिये। सुनो इसी सम्बन्ध की एक कहानी—मेरे मित्रो मे एक हैं बैरिस्टर साहब। बेचारे अभी नये नये विलायत से लौटकर आये हैं। हाईकोर्ट के हाते मे बैठकर जब पुराने बैरिस्टर मक्खियाँ मारते रहते हैं, तब फिर नये बैरिस्टर की बात ही क्या! कठिनाई से जीवन आगे खिसक रहा है। बीबी एम. ए. पास है। उसकी रोज़ रोज़ की फरमाइशो ने बैरिस्टर साहब को और भी अधिक चिन्तित बना दिया है। अब वह बैरिस्टर साहब से कहती है कि मुझे मोटर ला दीजिये। सुना है, बैरिस्टर साहब इसके लिये एक सेठ से रुपया कर्ज लेने वाले हैं। यह है नारी मे फैशन का प्राबल्य। भारतीय नारी का यह दोष नही है रमेश, यह दोष है उस अँग्रेजी शिक्षा और सभ्यता का, जिसके साँचे मे उसके जीवन को ढाला गया है। अँग्रेजी शिक्षा और सभ्यता मनुष्य को जीवन की वास्तविकता से दूर ले जाती ही है। डालो आज के युरोपीय नारी-समाज पर दृष्टि। क्या उनमे वास्तविक नारीत्त्व है, और क्या है उनमे प्रकृत सौन्दर्य? युरोप की नारियो ने फैशन और सौन्दर्य को बढाने वाले कृत्रिम उपायो को अपने जीवन मे स्थान देकर अपने प्रकृत सौन्दर्य को नष्ट कर लिया है। एक युरोपीय लेखक ने लिखा है—"युरोप मे सुन्दरी स्त्रियो की प्रदर्शनी होती है, पर मुझे तो प्रदर्शनी में सम्मिलित होने वाली एक भी स्त्री में सौन्दर्य नही दिखाई देता। युरोप की

स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये जितना ही अधिक कृत्रिम उपायो का अवलम्बन करती जा रही हैं, उतना ही उनका सौन्दर्य धूमिल पड़ता जा रहा है।" युरोप इत्यादि देशो में अब फैशन और सौन्दर्य को बढ़ाने वाले कृत्रिम उपायो के विरुद्ध काफी आन्दोलन भी होने लगा है। स्त्रियाँ अब स्वयं मन मे पाश्चात्ताप करती हुई पीछे लौटने की बात सोच रही हैं, पर भारतीय स्त्रियाँ अभी फैशन की ओर दौड़ती ही जा रही हैं और कदाचित् उस समय तक इसी प्रकार दौड़ती जायँगी, जब तक कि उससे पैदा होने वाले कुपरिणामो का चित्र भली भाँति अपनी आँखो से देख न लेंगी।

किसी न किसी रूप मे फैशन हर एक देश की नारी मे विद्यमान है रमेश! किसी न किसी रूप मे हर एक देश की नारी अपने सौन्दर्य को बढ़ाने का प्रयत्न करती ही है। संसार में कदाचित् ही ऐसी कोई स्त्री मिले, जो सुन्दरी न बनना चाहती हो और सुन्दरी बनने के लिये तरह-तरह के गहनों और कपड़ो को न पहनती हो। अब प्रश्न यह उठता है कि स्त्रियाँ फैशन क्यो करती हैं? बहुत ही साधारण प्रश्न है और उसका यह उत्तर भी बहुत ही साधारण है, सुन्दरी बनने के लिये। जो स्त्री जितना ही अधिक सुन्दर बनना चाहती है वह उतना ही अधिक फैशन भी करती है। स्त्रियो का सारा सौन्दर्य और फैशन पुरुषो के लिये होता हैं। पुरुषो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ही स्त्रियाँ फैशन करती और अधिक से अधिक सुन्दरी बनने का प्रयत्न करती हैं। स्त्रियों ने पुरुषो के मन को टटोल कर अपने जीवन के लिये यह एक बहुत बड़ा निष्कर्ष निकाला है। इतने दिनो तक जीवन के पथ पर दौड़ लगाने के पश्चात् स्त्रियाँ इस निष्कर्ष को निकाल सकी हैं कि स्त्री अपने सौन्दर्य की शक्ति से

ही पुरुष के मन को अपने पास बाँधकर रख सकती है। जीवन-निर्वाह के लिये स्त्रियो को पुरुषो की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसलिये उनके लिये यह आवश्यक भी है कि वे फैशन के द्वारा अपने सौन्दर्य को बढ़ायें, अधिक आकर्षक बने। अनुभवो के द्वारा भी यह बात ठीक ही प्रमाणित हुई है कि सुन्दरी और फैशनेबुल स्त्री पुरुषो के मन को अच्छी लगती है। अधिकाश पुरुष अपने घर की लक्ष्मी जैसी वहू को छोड़कर वेश्याओ के जाल मे क्यो फॅस जाते हैं? इसलिये कि वह तरह-तरह के फैशनो के द्वारा पुरुष के मन को बॉध रखने का अधिक प्रयत्न करती है। एक गार्हस्थ्य नारी के जीवन की अपेक्षा उसके जीवन को पुरुषो की अधिक आवश्यकता होती है, इसीलिये वह फैशन भी अधिक करती है। युरोपीय इत्यादि देशो मे पुरुषो को अधिक से अधिक आकर्षित करने के लिये ही सुन्दरी स्त्रियो की प्रदर्शिनियॉ होती हैं। उन प्रदर्शिनियो मे स्त्रियॉ वड़े उत्साह से भाग लेती हैं। इतना ही नही, अधिकाश ऐसी वस्तुओ के वेचने का काम स्त्रियॉ ही करती हैं, जिनका सम्बन्ध पुरुषो के जीवन से होता है। दूकानो, फैक्टरियो और कारखानो के मालिक केवल इसलिये स्त्रियो को नौकर रखते हैं कि वे अपने सौन्दर्य से अधिक से अधिक ग्राहको को दूकान की ओर आकर्षित करती हैं। इंगलैण्ड में वहुत सी ऐसी दर्जियो की दूकाने हैं, जिनमे कपड़ा सीने का काम तो पुरुष करते हैं, लेकिन नाप के लिये स्त्रियॉ ही नियत रहती हैं। ऐसी दूकानो में कपड़ा सिलाने के लिये ग्राहक भी अधिक जाते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन सभी कामो को स्त्रियॉ वड़े प्रेम और उत्साह के साथ करती है। स्त्रियॉ इन कामो को कभी भी वुरा न कहेंगी, जिनसे पुरुषो का मन उनकी डोर मे अधिक

से अधिक दृढ़ता के साथ बँधता हो। युरोप की स्त्रियाँ अपनी सामाजिक और आर्थिक स्वाधीनता के लिये तो पुरुषो के विरुद्ध आवाज उठाती है, किन्तु आजतक किसी नारी ने उन प्रदर्शिनियो का विरोध नही किया, जिनमें स्त्रियो का भी अन्यान्य वस्तुओ के समान ही प्रदर्शन होता है। उनका विरोध कोई नारी कर कैसे सकती है रमेश? उनके द्वारा तो वह पुरुष-शक्ति की बागडोर अपने हाथो में पकड़ती है और फिर करती है उसके साथ स्वेच्छाचारिता का अभिनय।

युरोपीय स्त्रियो की भाँति अब हमारे देश की स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के फैशनो के द्वारा पुरुषो को अपनी ओर आकर्षित करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करने लगी हैं। ज्यो-ज्यो फैशन अधिक बढ़ता जा रहा है, त्यो-त्यो साथ ही बढ़ता जा रहा है असंयम और अनैतिकता। दूसरे शब्दो मे असंयम और अनैतिकता का एक दूसरा नाम ही है फैशन। सादे चाल ढाल की नारी जितनी ही पवित्र होती है, फैशनेबुल नारी के हृदय में उतनी ही होती हैं दूषित भावनाये। एक स्त्री जब फैशन करती है, तब उसका तात्पर्य ही यह होता है कि कोई पुरुष उसकी ओर देखे। एक साधारण चाल-ढाल की नारी सड़को से निकल जाती है और उसे कोई नही देखता, किन्तु जब एक फैशनेबुल नारी चलती है, तब उसकी ओर सैकड़ो आँखे उठ जाती हैं। नारी जब स्वयं चाहती है कि पुरुष उसकी ओर देखे, तब पुरुष क्यों न उसको देखे? पुरुषो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ही स्त्रियाँ तरह-तरह के फैशनो से सुसज्जित होकर नुमाइशो, पार्कों, और मेलो मे घूमती है। युरोपीय देशो की तरह अभी हमारे देश के दूकानदारो ने इस उद्देश्य को सामने रख कर स्त्रियो को नौकर रखना तो आरम्भ नही

किया है, किन्तु यत्र-तत्र युरोपियन स्त्रियाँ हमारे देश में भी दूकानों पर बैठती हैं, और वे सैकड़ो ग्राहकों को अपनी ओर खींच लाती हैं। अभी थोड़े दिन हुये दिल्ली की एक सम्भ्रान्त महिला ने पुरुषो पर दोषारोपण करते हुये यह लिखा था कि पुरुषो की हरकतो के मारे आज कल सुन्दरी स्त्रियो का बाहर निकलना अधिक कठिन हो गया है, इसका उत्तर भी एक महिला ने उन्ही शब्दो में दिया है, जिनके द्वारा मै अपने इस पत्र में फैशन की तस्वीर खीचने वाला था। स्त्रियो की शिकायतो के बारे मे किसी स्त्री का उत्तर अधिक माननीय समझा जा सकता है, अत: यहाँ से मैं अपने पत्र को उन्हीं महिला के शब्दो में ले चल रहा हूँ। उन महिला का नाम है कमलादेवी शर्मा। वे हिन्दी की सुप्रसिद्ध लेखिका भी हैं। उन्होने उक्त महिला को उत्तर देते हुये चाँद में लिखा है—आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि हम लोग जहाँ कहीं भी जाती हैं, कुछ भ्रमरवृत्ति वाले व्यक्ति हम लोगो का पीछा करते हुये अवश्य दृष्टि आते हैं। पर ऐसा क्यो होता है? मै तो कहूँगी कि कदाचित् इसलिये कि अभी हमें बाहर निकलने का ज्ञान नहीं है। हमे घर और बाहर में कुछ अन्तर ही नहीं ज्ञात है। जिस प्रकार हम घर में स्वच्छन्द रूप से विचरण करती हैं, वही रूप हमारा बाहर भी होता है, जो हमारे लिये अत्यन्त हानिकारक है। हमें घर से बाहर निकल कर इस बात का पूर्णरूप से ध्यान रखना चाहिये कि इस समय हम एक दूसरे ही वातावरण में विचरण कर रही है और उसी की भाँति हमारा आचरण भी होना चाहिये। इसकाआशय यह नहीं है, कि घर से बाहर निकलते ही मुँह मे ताला लगा ले। पर कम से कम इस प्रकार से न हँसे बोलें कि लोग हमारी ओर ऑख फाड़-फाड़ कर देखने लगे, जैसे कोई वस्तु देख रहे हो।'

'दूसरी बात पुरुषो को हमारी ओर आकर्षित करने वाली हमारी वेश-भूषा है। आजकल जिस ढंग से हमारी बहुत सी बहने फैशन का शिकार हो रही हैं, उसे देखकर पुरुष तो पुरुष, हम स्त्रियाँ भी अवाक् रह जाती हैं। कदाचित् फैशन देखने के लिये अब हमें सुदूर पेरिस की यात्रा नहीं करनी पड़ेगी, क्योकि अब हमारा भिखारी भारत ही पेरिस का दादा बनने का दावा करने पर उतारू है। जब हम होठ, गाल पेण्ट करके स्लाव-लेस, ब्लाउज़, मकड़ी के जाले की सी साड़ी, जिसमे बालिस्त भर चौड़ा गोटा लगा हो, और बढ़िया ऊँची एँड़ी का जूता पहन कर बाज़ार मे निकलेंगी, और सभा-सोसाइटी में जायँगी तो यदि युवक-मण्डल हमारे पीछे-पीछे चले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? नुमायश मे जब हम स्वयं नुमाइशी गुड़िया बन कर जायँगी, तो फिर हमें लोग आँख फाड-फाड़ कर क्यो नहीं देखेंगे? नुमायश में लोग सुन्दर वस्तुओ को देखने, खरीदने और मनोरञ्जन करने जाते ही हैं। फिर यदि किसी नुमायशी गुड़िया का कोई दर्शक बन जाय तो बिगड़ने की बात क्या?' सच बात तो यह है रमेश, कि स्त्रियाँ स्वयं चाहती हैं कि पुरुष उनकी ओर देखे। मै यह नहीं कहता कि समाज की सभी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो अपने हृदय मे इस प्रकार के भाव रखती हैं, किन्तु मै यह अवश्य कह सकता हूँ कि आजकल स्त्रियो के हृदय मे इस प्रकार के भाव की तीव्र गति से सृष्टि होती जा रही है। अँग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के सम्पर्क मे रहने के कारण आजकल स्त्रियाँ यह अधिक चाहने लगी हैं, कि पुरुष उनकी ओर देखे। फैशन के द्वारा ही वे पुरुषो की आँखो को अपने आप मौन निमन्त्रण देती हैं।

आजकल फैशन स्त्रियो को इतना अधिक प्यारा होता जा रहा है

रमेश, कि वे फैशन के आगे प्रायः अपने पति के सुख दुख की भी चिन्ता नही करती। मै अपने कई मित्रों को जानता हूँ, जो अपनी फैशनेबुल पत्नी ही के कारण प्रायः दुकानदारो के ऋणी रहते हैं, घर में खाने को हो या न हो, पति के पास घर की आवश्यकताओ से पैसे बचते हो या न बचते हो, पर पत्नी को प्रति दिन नई साड़ी बदलने के लिये अवश्य चाहिये। पति महोदय चाहे दो-एक साधारण कपड़े पर दिन काट ले, पर पत्नी को जब तक रोज नई साडी बदलने को न मिलेगी, उसे चैन नही। एक अध्यापिकाजी स्वयं तो रोज नई साड़ी पहन कर स्कूल जाती हैं, किन्तु उनके पति महाशय सदा फटा कुरता पहिने रहते हैं। कदाचित् अपने फैशन के सामने उन्हे अपने पति की परवाह नहीं रहती। पति-पत्नी मे झगडा भी प्रायः फैशन ही के द्वारा होता है रमेश! मेरे मित्रो मे एक वकील साहब हैं, जो प्रति सप्ताह अपनी बीबी को एक नई साड़ी लाकर देते हैं। जिस सप्ताह में वे साड़ी लाकर नहीं देते, उन्हे पत्नी की झड़प का सामना करना पड़ता है। बहुत सी स्त्रियाँ गहनो के लिये अपने पतियो का जीवन अधिक विपन्न कर दिया करती हैं। मै ऐसे अनेक पुरुषो को जानता हूँ, जिन्होने अपनी बीबियो के दुराग्रह पर कर्ज लेकर गहने बनवाये और उसके बदले में उन्हे अधिक से अधिक आपदायें उठानी पड़ीं। स्त्री की अभिलाषाओ की बराबर पूर्ति करने ही के कारण एक बैरिस्टर साहब का बॅगला तक नीलाम हो गया, और नीलाम हो गई, उनकी वह मोटर भी, जिसपर चढ़कर कभी उनकी फैशनेबुल बीबी वायु-सेवन के लिये जाती थी। बेचारे बैरिस्टर साहब इस समय किराये के मकान मे रहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इतने पर भी उनकी बीबी के हृदय ने फैशन से अपना सम्बन्ध न तोड़ा।

क्या यह सब नारी-समाज के लिये कलंक नहो है रमेश ! काश स्त्रियाँ अपने सम्मानित जीवन पर लगने वाले इस कलंक को समझ सकतीं और समझ कर अपना पथ बदल सकतीं ! ......

तुम्हारा वही

फणीन्द्र

* समाप्तः *